आलोचनात्मक अध्ययन...
(प्रश्नोत्तर रूप में)
जायसी
—भारतभूषण 'सरोज' एम० ए
विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा

जायसी
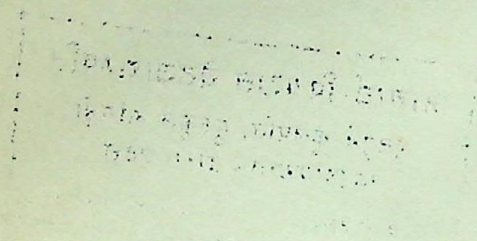
[आलोचनात्मक अध्ययन]

लेखक

श्री भारतभूषण 'सरोज' एम० ए०

विनोद पुस्तक मन्दिर

हॉस्पिटल रोड, आगरा

प्रकाशक :

राजकिशोर अग्रवाल

विनोद पुस्तक मन्दिर

हॉस्पिटल रोड, आगरा

चतुर्थ संस्करण : अगस्त १९६१

मूल्य : २.५०

मुद्रक :

रत्नदीप प्रिंटिंग प्रेस

बेलनगंज, आगरा

दो शब्द

जायसी हिन्दी-साहित्य की प्रेमाश्रयी शाखा के प्रतिनिधि कवि हैं। मुसलमान होते हुए भी हिन्दू-जीवन की कहानी को इतने सरस और स्वाभाविक रूप में प्रस्तुत करना इन्हीं जैसे महान् कवि का कार्य था। शताब्दियों तक ये महाकवि सहृदयों के लिए अज्ञात ही रहे। समालोचक शिरोमणि स्वर्गीय रामचन्द्र शुक्ल ने जिस समय जायसी ग्रन्थावली की विस्तृत भूमिका लिखी उस समय सबका ध्यान इस महाकवि की ओर गया। सम्प्रति इनके पद्मावत का अध्ययन-अध्यापन प्राय: सभी उच्च कक्षाओं में होता है।

मुझे आशा है कि उच्च कक्षाओं के छात्रों को जायसी को समझने में इस पुस्तक से विशेष सहायता मिलेगी। पुस्तक के लिखने में विशेष सहायता तो शुक्लजी की जायसी ग्रंथावली की भूमिका से ही ली गई है किन्तु अन्य उपलब्ध सामग्री से भी लाभ उठाया गया है। लेखक उन सबके प्रति हृदय से आभारी है। प्रिय सरोज वर्मा की स्नेहपूर्ण सहायता के लिए मैं उसे हृदय से साधुवाद देता हूँ।

रामजस-कॉलेज, दिल्ली। भारत भूषण "सरोज"
१ दिसम्बर, १९५४

प्रश्न-सूची

प्रश्न संख्या	पृष्ठ संख्या
१—जायसी के समय की विभिन्न परिस्थितियों का विश्लेषण कीजिए ।	१-९
२—जायसी की प्रामाणिक जीवनी प्रस्तुत कीजिए और उनके लिखे हुए ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय दीजिए ।	९-१९
३—प्रेमाश्रयी शाखा का विकास बतलाते हुए उसमें जायसी का स्थान निश्चित कीजिए ।	१९-२८
४—सूफी मत के प्रमुख सिद्धान्तों का उल्लेख करते हुए बतलाइए कि जायसी ने कहाँ तक इन सिद्धान्तों का अनुकरण किया है अथवा इनमें संशोधन किया है ?	२८-३६
५—ज्ञानाश्रयी शाखा के सन्त कवियों और प्रेममार्गी शाखा के सूफी कवियों में जो प्रवृत्ति भेद आपको लक्षित हुआ हो उसका निरूपण कीजिए । हिन्दू-धर्म के विविध सिद्धान्तों का इनमें कहाँ तक प्रभाव पड़ा है ?	३६-४२
६—सूफी काव्य की विशेषतायें बतलाइए ?	४२-५१
७—जायसी ने पद्मावत की कथा किसी ऐतिहासिक आधार पर लिखी है अथवा वह कवि-कल्पना प्रसूत है ? सप्रमाण उत्तर दीजिए ।	५१-५९
८—सप्रमाण सिद्ध कीजिए कि पद्मावत में इतिवृत्तात्मकता और रसात्मकता का मणिकांचन संयोग है ।	५९-६८
९—सिद्ध कीजिए कि जायसी के पद्मावत में भाव-पक्ष और कला-पक्ष का सुन्दर समन्वय हुआ है ।	६८-७८

१०—जायसी की भाषा-शैली पर एक लेख लिखिए। ७६-८६

११—पद्मावत के संयोग शृङ्गार की समीक्षा कीजिए। ८६-६८

१२—"जायसी का विरह वर्णन अत्यन्त मार्मिक है।" इस कथन की विवेचना कीजिए। ६६-१०८

१३—पद्मावत की प्रेम-पद्धति का विश्लेषण कीजिए। १०८-११८

१४—जायसी के रहस्यवाद पर एक लेख लिखिए। ११८-१२८

१५—महाकाव्य की दृष्टि से जायसी के पद्मावत की समीक्षा कीजिए। १२८-१३७

१६—जायसी के प्रकृति-चित्रण पर उद्धरण देते हुए लेख लिखिए। १३७-१४६

१७—कबीर और जायसी के रहस्यवाद की तुलना कीजिए। और बताइए कि हिन्दी साहित्य के विकास पर इसका क्या प्रभाव पड़ा? १४६-१६०

१८—"कबीर ने केवल भिन्न प्रतीत होती हुई परोक्ष सत्ता की एकता का आभास दिया था। प्रत्यक्ष जीवन की एकता का दृश्य सामने लाने की आवश्यकता बनी थी। यह जायसी द्वारा पूरी हुई।" इस कथन में अभिव्यक्त तथ्य को ध्यान में रखते हुए जायसी तथा कबीर का तुलनात्मक विवेचन कीजिए। १६०-१६३

१६—जायसी और विद्यापति के नख-शिख वर्णन के सौन्दर्य की तुलनात्मक विवेचना कीजिए। १६३-१६३

प्रश्नोत्तर

प्रश्न १—जायसी के समय की विभिन्न परिस्थितियों का विश्लेषण कीजिए।

उत्तर—वीरगाथा काल के समाप्त होने के पहिले ही साहित्य के क्षेत्र में क्रान्ति आरम्भ हो गई थी। मुसलमानों के बढ़ते हुए आतङ्क ने जनता के साथ साहित्य को अस्थिर कर दिया था। मुसलमानों की शक्ति और धर्म के विस्तार ने साहित्य का दृष्टिकोण बदल दिया था तथा हिन्दी साहित्य की धारा अपने पुराने उद्दाम और ओजस्वी वीरगाथात्मक रूप को छोड़ कर भक्ति की प्रशान्त कलित कविता के रूप में प्रवाहित होने लगी। चारणों की रचनाएँ अधिकतर राजस्थान तक सीमित थीं। मध्यदेश में जहाँ मुसलमानों के अदम्य उत्साह और प्रवल वेग ने कई राजपूती रियासतों को समाप्त कर दिया था वहाँ चारण कवियों का कोई आश्रयदाता नहीं रह पाया था। हिन्दुओं के पास न शारीरिक बल रह गया था और न ही आत्मिक बल। चूंकि बाबर के पश्चात् भारतवर्ष पर किसी यवन आक्रमणकारी ने चढ़ाई नहीं की थी अतः बाह्य शत्रु से लोहा लेने की भावना हिन्दू जनता के हृदय में से लुप्त हो गई थी। लगभग सारे भारतवर्ष पर मुसलमानी पताका फहरा रही थी। सारे उत्तरी भारत पर मुसलमानों का आतंक था। दक्षिणी भारत भी इनके आक्रमणों से बच नहीं सका। देवगिरि के राजा यादव ने एलिच-पुर को अपने राज्य में मिला लिया था। महाराष्ट्र और कर्नाटक के राजाओं ने अधीनता स्वीकार करली थी। मुसलमानों की इस बढ़ती हुई महत्त्वाकांक्षा और ऐश्वर्य ने हिन्दू जनता के अस्तित्व पर प्रश्नवाचक चिन्ह लगा दिया। जिन राजाओं में अपने सम्मान और शक्ति की मात्रा शेष रह गई थी वे

उसकी रक्षा के लिए अनवरत परिश्रम कर रहे थे। विजयनगर का हिन्दू शासक स्वतन्त्र हो गया था। मुसलमानों के बढ़ते हुए प्रभुत्व ने हिन्दू राजाओं को जर्जरित कर दिया था। वे स्वयं लड़ते-लड़ते क्षीण हो गये थे। अतः अब न उनके पास गौरव ही रह गया था और न गाने की सामग्री ही। कवियों का उत्साह क्षीण हो गया था।

मुसलमानों की प्रवृत्ति केवल लूटमार कर धन संचय की न होकर भारत में राज्य स्थापित करने की थी। पंजाब से लेकर बंगाल तक मुसलमानों का आधिपत्य हो गया था। बिहार, बंगाल, रणथम्भौर, अन्हलवाड़ा, अजमेर, कन्नौज, कालिंजर आदि प्रधान स्थानों में मुसलमानी शासन स्थापित हो चुका था। राठौर और चौहान वंश के पराक्रम का सूर्य ढल चुका था। हाँ, इतना अवश्य था कि राजस्थान के राजपूत अपनी गौरव की गाथा को नहीं भूले थे। समय-समय पर मुसलमानों की असावधानी को देखकर वे अपना सिर तान तो लेते परन्तु मुँह की खाते थे क्योंकि ये दिन उनकी अवनति के थे। मुसलमान अपने राज्य विस्तार के साथ-साथ धर्म का भी विस्तार कर रहे थे। हिन्दू जनता पर मनमाने अत्याचार किये जा रहे थे। हिन्दुओं के प्रयत्न करने पर भी विदेशियों की विपत्ति देश से दूर न हुई। देखते ही देखते वे सारे राज्य भर में व्याप्त हो गये। सिन्ध राजपूतों के हाथ में था परन्तु मुसलमानों का आतङ्क वहाँ पर भी छाया हुआ था। इस प्रकार राज-नीति की मन्त्रणाएँ ही राज्यों के उत्थान और पतन का कारण बनी हुई थीं। ऐसे अनिश्चित काल में हिन्दू जनता के हृदय में जिस भेद और आतङ्क को स्थान मिल रहा था वह उनके धर्म को जर्जरित कर रहा था। धर्म की रक्षा करने की शक्ति हिन्दुओं के पास रह नहीं गई थी। यदि मुस-लमान केवल लूटमार ही करके चले जाते तो भी हिन्दुओं की शान्ति में क्षणिक बाधा पड़ती परन्तु जब उन्होंने हिन्दुस्तान को अपनी सम्पत्ति मानकर उस पर शासन आरम्भ किया तब हिन्दुओं के सामने अपने अस्तित्व को स्थिर रखने का प्रश्न पैदा हुआ। जब मुसलमानों ने अपने धर्म का प्रचार करना शुरू किया तब परिस्थिति और भी विषम हो गई।

क्योंकि हिन्दुओं में मुसलमानों से प्रतिकार लेने की शक्ति तो थी नहीं

और न ही वे अपने धर्म की अवहेलना ही सहन करते थे। ऐसी अवस्था में "निर्बल के बल राम" के आधार पर भगवान का आह्वान किया गया। कभी-कभी यदि राख में छिपी चिनगारी की तरह वे भड़क भी पड़ते तो दूसरे ही क्षण शान्त हो जाते। इस प्रकार उन्होंने दुष्टों को दण्ड देने का काम भगवान पर छोड़ दिया। वे सांसारिक स्थिति से परे आध्यात्मिक वातावरण में विहार करने लगे। इस प्रकार वीरागाथाकाल की वीर रसमयी प्रकृति धीरे धीरे शान्त होगई। राजाओं का राजनैतिक दृष्टिकोण अस्पष्ट और धुंधला हो गया। इस प्रकार एक मात्र भगवत्-भक्ति का सहारा लेकर प्रभु-प्रेम का पीयूष-प्रवाह बहाकर समाज में सरसता का संचार किया। इसके अतिरिक्त यह बात भी निश्चित थी कि मुसलमान लोग भारतवर्ष में पर्याप्त संख्या में बस चुके थे। अतः अब उनके वापिस जाने की सम्भावना न रह गई थी। इसलिए जनता ऐसा मार्ग खोजने का प्रयत्न करने लगी जिससे हिन्दू और मुसलमान दोनों का परस्पर वैषम्य दूर हो जाये तथा परस्पर प्रेम बढ़ने लगे। इस भावना को लेकर सभी ने शान्ति का वातावरण पैदा करने का प्रयत्न किया यद्यपि समय पर कभी-कभी युद्ध का झोंका आता परन्तु कुछ देर ही अपना प्रभाव पैदा कर पाता। हिन्दुओं को शान्त करने के लिए मुसलमानों ने उन्हें अपनी संस्कृति में दीक्षित करने का भी प्रयत्न किया। क्योंकि अब मुसलमान लोग स्वयं को इसी देश का निवासी समझने लग गये थे। इस्लाम ने अज्ञात रूप से हिन्दुओं के धार्मिक विचारों पर भी आघात पहुँचाया यद्यपि हिन्दू जनता उस धार्मिक आघात को पाकर विचलित हो उठी परन्तु आत्म-रक्षा के विचार से वह धीरे-धीरे मुस्लिम संस्कृति को समझने लगी। फलतः धार्मिक आन्दोलन भी साथ ही साथ चल पड़ा।

धार्मिक परिस्थितियाँ—कबीर के हिन्दी साहित्य में आविर्भाव के समय हिन्दू-मुस्लिम जनता में धार्मिक वैषम्य था परन्तु कबीर ने उन दोनों में सामंजस्य स्थापित करने के लिये मध्यम मार्ग का अनुसरण किया। हिन्दुओं ने मुसलमानों की निर्गुण भावना को निस्सङ्कोच भाव से स्वीकार कर लिया और उधर से हिन्दुओं के भी सिद्धान्तों को नत मस्तक होकर मुसलमानों ने

अपनाना शुरू किया। उत्तर भारत में योगी या नाथ पंथी साधु, निराकार का प्रचार कर रहे थे। दूसरी ओर दक्षिण में रामानुज, निम्बार्क और मध्वाचार्य आदि राम, कृष्ण और नारायण की साकारोपासना का प्रचार कर रहे थे। इस समय तक उत्तर भारत का वातावरण युद्धमय था अतः धार्मिक भावनाओं को अभी तक पनपने का अवसर नहीं मिला था परन्तु थोड़ी सी शान्ति होते ही यह धार्मिक भावना विस्तृत क्षेत्र में व्याप्त होने लगी। योगियों के सिद्धान्तों के आधार पर कबीर ने निर्गुणोपासना का उपदेश देकर हिन्दू और मुसलमानों को समीप लाने का प्रयत्न किया। अब तक के संघर्षों से समाज का हृदय क्षुब्ध और जनता का जीवन नीरस था। उसके मत, मन और हृदय शान्त नहीं थे। तब कुछ सूफी भक्तों ने नीरसता का निराकरण करने के लिए सच्ची सरसता का संचार किया और जन-जीवन को आल्हादित कर दिया। मुख्य-मुख्य आचार्यों ने धार्मिक क्षेत्र में विविध दार्शनिक सिद्धान्तों के आधार पर अपने-अपने वादों का प्रतिपादन किया।

ज्ञान प्रधान अद्वैतवाद—विश्व विदित वेदान्त सिद्धान्त भारतवर्ष का सर्वश्रेष्ठ धार्मिक सिद्धान्त है। इसके व्यापक प्रचार का श्रेय शङ्कराचार्य को है। शङ्कराचार्य ने अद्वैतवाद के सिद्धान्त के आधार पर जीव और ब्रह्म की एकता का तथा जगत के मिथ्यावाद का निरूपण किया। संसार के समस्त उपकरणों में ब्रह्म की सर्वव्यापकता को आधार बताया। ब्रह्म के सिवाय किसी जगत की वस्तु में सत्य नहीं। ब्रह्म और जीव में यह जो भेद प्रतीत होता है वह केवल नामरूपात्मक माया के कारण ही है। इस नाम रूपात्मक माया को ज्ञान और सत्य द्वारा मिटाया जा सकता है। अद्वैतवाद के आधार पर निर्गुण भगवान ही 'एकोऽहम् बहु स्याम्' का संकल्प ही संसार के प्रपंच का रूप धारण कर लेता है। इसी भगवान को प्रकट करने के लिये 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' अहं 'ब्रह्माऽस्मि' की स्थिति मनुष्य के हृदय में व्याप्त होनी चाहिये। अतः ब्रह्म प्राप्ति के लिए ज्ञानियों ने कहा है "ऋते ज्ञानान्न मुक्ति।"

रहस्यवाद—अद्वैतवाद के आधार पर ही इसी काल में रहस्यवाद की भावना भी स्थापित की गई जिससे जनता का बाहरी भेद-भाव दूर हो गया।

आचार्य शुक्ल लिखते हैं कि—"चिन्तन के क्षेत्र में जो अद्वैतवाद है वही भावना और कल्पना के क्षेत्र में रहस्यवाद है।"

रहस्यवाद के अतिरिक्त एक धार्मिक धारा और वही जिसे सूफी परम्परा कहते हैं। ईसाई, इस्लाम, यहूदी आदि सभी सम्प्रदाय द्वैतवाद ही हैं। ये एकेश्वरवाद या कट्टर पैगम्बरी खुदावाद के अनुयायी हैं। इस्लाम आदि सम्प्रदायों में ईश्वर एक है और जीव उससे सर्वथा भिन्न है। ईसा, मुहम्मद आदि पैगम्बर भी स्वयं ईश्वर या उसके अंश नहीं प्रत्युत संदेशवाहक दूत हैं। वे पुनर्जन्म को नहीं मानते। अद्वैतवाद का खण्डन करते हुये ये बन्दा और जीव को दो पृथक स्थितियों में मानते हैं। परन्तु वास्तव में यह सिद्धान्त भ्रममूलक रहा। फारस के कुछ सन्तों ने निर्भीक होकर अद्वैतवाद को फिर से स्थापित कर दिया। कई यूनानियों का कहना है कि 'सूफी' ज्ञानी को कहते हैं और चूंकि ये सूफी भी ज्ञानी थे अतः इन्हें सूफी कहा जाता है। इसी समय शङ्कर के ज्ञान और साधना मूलक अद्वैतवाद के आधार को निर्मल मानकर श्री रामानुजाचार्य ने विशिष्ठाद्वैतवाद की धारा को अपनी ज्ञानमयी प्रतिभा से प्रवाहित किया। उसने जीव को ब्रह्म का अंश माना। जीव को ही ब्रह्म निर्मित माना। इसीलिए इनकी एकरूपता नहीं प्रत्युत समान रूपता या सामीप्यता मानी गई। शङ्कराचार्य के अद्वैतवाद का ब्रह्म मूलतः निर्गुण निराकार है। वह उपाधि भेद के कारण ब्रह्म, विष्णु, शिव आदि सगुण साकार रूप भी स्वीकार करता है। उपासना के लिए साकार और चिन्तन के लिये निराकार रूप उपयुक्त होता है। परन्तु रामानुज का ब्रह्म निर्गुण निराकार नहीं प्रत्युत वैकुण्ठविहारी चतुर्भुजधारी सगुण लक्ष्मीपति नारायण हैं।

विशिष्ठाद्वैतवाद के समान दक्षिण भारत में एक और लहर चली जिसे बल्लभाचार्य ने अपने दायित्व में स्थापित किया। गोस्वामी बल्लभाचार्य ने जीव ब्रह्म की एकरूपता को स्वीकार किया परन्तु इसके साथ ही जीव और जगत की पृथक सत्ता को मिथ्या नहीं प्रत्युत सत्य ही माना। इनके ब्रह्म भी लोकविहारी सगुण साकार राधाकृष्ण ही हैं। प्रेमलक्षणा भक्ति के द्वारा ही मनुष्य की मुक्ति मानी है। जब मनुष्य पर भगवान का अनुग्रह हो जाये

तभी मनुष्य को मुक्ति मिल जाती है। इस प्रकार भक्ति के रसमय वातावरण में अन्य आचार्यों ने भी एक ही ब्रह्म और जीव को अपने-अपने मत और विचारानुसार प्रकट किया। इसका स्वाभाविक कारण जनता के हृदय की तड़पन और अशान्ति था जिससे वह शान्ति प्राप्त करना चाहती थी। मलिक-मुहम्मद जायसी के आविर्भाव के सौ वर्ष पहले कबीरदास हिन्दू और मुसलमानों के कट्टरपन को खूब फटकार चुके थे और साधारण जनता राम और रहीम के ऐक्य को स्वीकार कर चुकी थी। इस प्रकार बहुत दिनों तक साथ-साथ रहते हुए हिन्दू और मुसलमानों ने अपना-अपना हृदय एक दूसरे के सामने खोलना शुरू कर दिया। जनता की प्रवृत्ति भेद से अभेद की ओर हो चली थी।

चैतन्य महाप्रभु वल्लभाचार्य तथा रामानन्द के प्रभाव से प्रेमप्रधान वैष्णव धर्म का जो प्रभाव बंग देश से लेकर गुजरात तक बहा, उसका सबसे अधिक विरोध शाक्तधर्म और वाममार्ग के साथ दिखाई दिया। शाक्तमत विहित पशु हिंसा, मन्त्र-तन्त्र तथा यक्षिणी आदि की पूजा वेद विरुद्ध अनाचार के रूप में समझी जाने लगी। हिन्दुओं और मुसलमान दोनों के बीच सामान्य साधुता का आदर्श प्रतिष्ठित हो गया था और बहुत से मुसलमान भी अहिंसा का सिद्धान्त स्वीकार करके माँस भक्षण को बुरा कहने लग गये थे। ऐसे समय में कुछ भावुक मुसलमान 'प्रेम की पीर' की कहानियों को लेकर साहित्य के क्षेत्र में उतरे। इनकी मधुरता और कोमलता ने यह दिखा दिया कि एक ही गुप्त तार मनुष्यमात्र के हृदय से होता हुआ सारे शरीर में झनझनाहट पैदा कर देता है।

सामाजिक परिस्थितियाँ—निर्गुणोपासक कबीर के आविर्भाव के समय समाज की स्थिति अत्यधिक विषम थी। हिन्दू-मुसलमान वैषम्य, सामाजिक संकीर्ण रूढ़ियों तथा अन्धविश्वास का घोर तम सारे समाज को अन्धकार-मय किए हुए था। कबीर की निर्गुणोपासना ने साहित्य की अपेक्षा समाज को अधिक प्रभावित किया। क्योंकि कबीर सुधारक पहले और कवि पीछे थे। उन्होने यह देखा कि धर्म के बाह्य-विधि विधानों से ही हिन्दू और

मुसलमान परस्पर लड़ते-भिड़ते रहते हैं। हिन्दू पूर्व की ओर मुख करके प्रार्थना करता है तो मुसलमान पश्चिम की ओर से खुदा को पुकारता है। कबीर ने दोनों रूपों के वाह्यावरण को छिन्न-भिन्न करना चाहा। हिंदुओं की वाह्य-विधियों को देखकर मुसलमान बहुत चिढ़ा करते थे। विपरीत इसके हिन्दू धर्म तो इतना उदार और सहनशील था कि उसमें विभिन्न विरुद्ध प्रवृत्तियाँ और साम्प्रदायिक सिद्धान्त समा सकते थे। अतः मूर्तिपूजा न करके अपने घट और घर में ही प्रभु की उपासना कर लेने से ही हिन्दू धर्म का कुछ बनता-विगड़ता न था। ये मुसलमान की तरह कट्टर और संकीर्ण विचारों के नहीं थे कि जरा सा उल्लंघन करने पर किसी प्रकार का कुफ्र हो जाता। मुसलमानों में तनिक सा धर्म के विरोध में कहने से बड़ा भारी 'कुफ्र' माना जाता था। उसकी सामाजिक और धार्मिक संकीर्णता ने ही उनकी धार्मिक प्रगति और सामाजिक विकास को रोका। कबीर इस स्थिति को भली प्रकार समझते थे। वे यह जानते थे कि हिन्दुओं की उदारता और सहृदयता किंचित-मात्र भी विफल नहीं होती थी यदि उनके वाह्य विधि-विधानों की उपा-देयता का समर्थन न किया जाये। कबीर को यह विश्वास था कि यदि कालान्तर में हिन्दुओं के विधि-विधानों का प्रभाव मुसलमानों पर पड़ जायेगा तो वे कालान्तर पश्चात् हिन्दू हो जायेंगे और भारतीयता के रङ्ग में पूर्णतया सरोबार हो जायेंगे अतः कबीर ने मुसलमानों की एक-एक बात को चुन-चुन कर काटा। नमाज, रोजा, पीर, पैगम्बर, ईद, बकरीद, बाँग आदि कोई भी अन्य ऐसा मुसलमानों का अङ्ग नहीं होगा जिसको कबीर ने अपनी तीक्ष्ण कैंची से न काटा हो।

रोजा तुर्क नुमाज गुजारे विसमिल बाँग पुकारे।
ताके भिसत कहाँ ते होये, साझै मुर्गी मारे॥
काँकर पांथर जेरि के मस्जिद लेई चुनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बाँग दै वहरा हुआ खुदाय॥

कहने का अभिप्राय यह है कि कबीर ने हिन्दुओं के वाह्य विधिविधानों का खण्डन किया। उसका एकमात्र उद्देश्य हिन्दू और मुसलमानों में शुद्ध

सात्विक भारतीय धर्म का प्रचार था। उन्होंने हिन्दुओं को मुसलमान नहीं बल्कि शुद्ध भारतीय होने के लिये बाधित किया। कबीर का उद्देश्य प्रभु भक्ति का प्रचार न करके समाज सुधार या हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य को लाना था। उन्होने अपने पुराने दशरथीराम को नवीन निर्गुण निर्विकार का रूप दे दिया किन्तु उसका नाम राम, गोविन्द, हरि ही रहने दिया। निम्न वर्ग की जनता को सत्य, अहिंसा, सदाचार, सन्तोष आदि का पाठ पढ़ाकर उन्हें उन्नत बनाने का अत्यन्त ही स्तुत्य प्रयत्न उन्होंने किया। मुसलमानों पर उनका सहसा प्रभाव पड़ना तो बहुत असम्भव था। वे सहसा भारतीय रङ्ग में नहीं रँगे जा सके परन्तु धीरे-धीरे उनका प्रभाव उत्तरोत्तर बढ़ता गया। कबीर की प्रेरणा प्राप्त कर जायसी, रहीम, रसखान आदि भी भारतीय रङ्ग में रङ्ग गये। इस प्रकार कबीर द्वारा समाज में बोया हुआ बीज आगे चलकर जायसी के रूप में अंकुरित हुआ। जायसी ने कबीर की रही सही कमी को प्रेम के पीर के आधार पर सम्पन्न किया। कबीर की अटपटी और नीरस वाणी से साधारण जनता तो प्रसन्न हो गई परन्तु विद्वत्मण्डली पर इनका प्रभाव न पड़ा। जायसी ने अपनी प्रेममयी मधुर वाणी में सभी को ऐसा प्लावित किया कि जिसका प्रभाव युगयुगान्तर तक भी दूर नहीं हो सकता था।

मानव मात्र के कल्याण के लिये प्रेम-भक्ति रूपी संजीवनी बूटी का रूप जायसी ने प्रदान किया। कबीर ने यद्यपि अपनी प्रेमभक्तिमयी वाणी के द्वारा हिन्दू-मुस्लिम के आन्तरिक वैमनस्य को दूर किया तथापि कुछ प्रच्छन्न फकीर ऐसे थे जिनका एकमात्र उद्देश्य इस्लाम का प्रचार करना था। वे अपने आडम्बर पूर्ण आचरण से मोहित कर लोगों को अपने वश में करते और उनकी अन्ध-भक्ति को बढ़ाते। कुछ ऐसे भी अन्धमूर्ख थे जो स्वयं को हिंदू समझते हुए भी कब्रों को जाकर पूजते थे। उच्चवर्गों में उनकी दाल नहीं गलती थी किन्तु वे तथाकथित निम्न वर्ग को अधिक प्रभावित करते थे। इस प्रकार प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप में सूफी साधुओं ने जनता पर अपना अधिकार जमाया।

विदेशी सत्ता के अधिक रूप से अधिकृत हो जाने से हिन्दुओं में संस्कृति

और शिक्षा का प्रसार नहीं रह गया था। लुक छिप कर कुछ लोग मन्दिरों में पूजा आदि अवश्य करते, शास्त्र चर्चा आदि करते परन्तु सामान्य जनता इन बातों से दूर हटती जाती थी। इस प्रकार धर्मध्वजों के पतन के कारण दूसरों को सिर ऊँचा करने का अवसर मिलता था। कुछ आचारनिष्ठ त्यागी और विद्याव्यसनी द्विज अवश्य रह गये थे। परन्तु उनका प्रभाव भी दिन प्रति दिन कम होता जाता था।

जैसे राजशक्ति की प्रवलता ने भारतीय जन-समाज को छिन्न-भिन्न कर दिया था वैसी ही दूसरी ओर धर्म की इस नई व्याख्या ने साधारण लोगों को लुभाकर चिरकाल से प्रतिष्ठित आदर्शों, विश्वासों और सिद्धान्तों पर प्रहार किया। धार्मिक विश्वास और आचरण विषयक उक्त कार्यों से समाज की एकता छिन्न-भिन्न हो गई। जो लोग देश की विद्या, संस्कृति और एकता के मूल में युग-युग से जीवन देकर हरा-भरा करते उनकी हँसी उड़ाई जाती, उन्हें अहमन्यता से प्रभावित समझा जाता तथा उनकी अवहेलना की जाती। फलतः समाज की नीवें खोखली हो गईं। ऐसी स्थिति में जिस साहित्य की आवश्यकता थी, समाज को जैसे कवि की इच्छा या जिन चीजों की आवश्यकता थी सूफी कवि वे चीजें उन्हें दे सके। यद्यपि समाज की नैय्या डगमगा रही थी, उस पर भयंकर उत्ताल तरङ्गों और तूफानों के थपेड़े लग रहे थे, चारों तरफ भयङ्कर आँधी चल रही थी और ऊपर से मूसला-धार वर्षा ओलों सहित हो रही थी, फिर भी सूफी कवियों ने शीघ्र ही ऐसी स्थिति पर नियन्त्रण कर लिया और देश में शाँति और प्रेम का बीज बोकर सुखमय साहित्य का सृजन किया।

प्रश्न २—जायसी की प्रामाणिक जीवनी प्रस्तुत कीजिए और उनके लिखे हुए ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उत्तर—प्रायः महापुरुषों और महाकवियों के जन्मकाल, जन्म-तिथि तथा जन्मस्थान, जीवनचरित्र आदि के विषय में शङ्का बनी रहती है।

इसका कारण यह है कि ये लोग अपने विषय में स्वयं कुछ भी लिखकर नहीं जाते जिससे अनेक अनुमानों के आधार पर अनेक किंवदंतियाँ फैल जाती हैं। सूरदास, तुलसी, कबीर, चंदवरदाई, देव, बिहारी आदि सभी के साथ इसी प्रकार की दशा रही है। भिन्न-भिन्न आलोचक, साहित्य-प्रेमी अन्वेषण करके इन कवियों के विषय में नये-नये अनुमान प्रस्तुत करते रहे। कविवर जायसी के जीवन-वृत के सम्बंध में भी यही कहा जा सकता है। इनके विषय में कुछ अधिक ज्ञात नहीं है। यद्यपि जायसी के प्रसिद्ध ग्रँथ पद्मावत में जायसी ने तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक और साहित्यिक स्थिति का परिचय दिया है और उससे इनके साहित्यिक-क्षेत्र में आविर्भाव का अनुमान लगाया जा सकता है तथापि निश्चय रूप से पर्याप्त प्रमाण में कोई भी ऐसी उक्ति नहीं है। अन्य कवियों की भाँति इनके विषय में भी किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। पंडित रामचन्द्र शुक्ल के कथन के आधार पर जायसी के जीवनवृत पर कुछ प्रकाश डाला जा सकता है।

जायसी की एक पुस्तक "आखिरी कलाम" के नाम से है जो फारसी अक्षरों में छपी हुई है। इस पुस्तक की रचना सन् ९३६ हिजरी में मानी जाती है। जायसी ने उसमें बावर की प्रशंसा की है और अपने जन्म सम्वन्ध के विषय में लिखा है—

भा अवतार मोर नव सदी। तीस बरस ऊपर कवि बदी।

ये पंक्तियाँ उसमें मिलती तो हैं परंतु इन पंक्तियों से कवि का तात्पर्य विशेष रूप से स्पष्ट नहीं हो पाता। यदि नव सदी का अर्थ हम नवीं सदी करते हैं तो इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि का जन्मकाल सन् ९०० हिजरी के लगभग ठहरता है। इससे यह भी प्रतीत होता है कि कवि ३० वर्ष की अवस्था के ऊपर जाकर अच्छी कविता करना सीख गये थे। परंतु यह कोई प्रमाणिक उदाहरण और विश्वसनीय उल्लेख नहीं समझा जा सकता। जायसी का सबसे बड़ा और प्रसिद्ध ग्रँथ पद्मावत है। जिसका निर्माण काल कवि ने इस प्रकार माना है।

"सन नव सेंतालिस ग्रहा,

कथा ग्ररंभ बैन कवि ग्रहा।"

इसके ग्रनुसार पद्मावत की रचना हिजरी ६४७ में मानी जा सकती है। इसके ग्रनुसार जायसी का कविता काल सं० १५६७ ठहरता है। यह सुनकर हम कैसे विश्वास कर सकते हैं क्योंकि ग्रन्थारम्भ में कवि ने मसनवी की रूढ़ि के ग्रनुसार "साहेवक्त" शेरशाह की प्रशंसा की है जिसके शासन काल का ग्रारम्भ ६४७ हिजरी ग्रर्थात् सम्वत् १५४० माना जाता है। पद्मावत का एक पुराना बंगला ग्रनुवाद मिलता है जिसमें उसकी रचना तिथि इस प्रकार है—

'शेख मुहम्मद जति जखन रजित ग्रन्थ संख्या सप्तविंशनवसत' जिसके ग्रनुसार इसका रचना काल सन् ६२७ हिजरी ठहरता है। इस दशा में यही संभव जान पड़ता है कि कवि ने कुछ थोड़े से पद पहले बनाये हों फिर १५-२० वर्ष के ग्रन्तर से इसे शेरशाह के समय में पूरा किया हो। ऐसा जान पड़ता है कि कवि ने पद्मावत की कथा को लेकर कुछ थोड़े से पद पहले रच डाले होंगे। फिर कुछ काल-यापन इधर-उधर घूमने ग्रौर पर्यटन में किया होगा। ग्रन्त में जायस में ग्राकर इस ग्रन्थ का पुनः सृजन किया होगा। क्योंकि 'पद्मावत' की इन पंक्तियों से इस बात का संकेत हमें मिलता है—

जायस नगर धरम ग्रस्थानू तहाँ ग्राइ कवि कीन्ह बखानू।

"तहाँ ग्राइ' शब्द बड़े संदेह को उत्पन्न करते हैं। वहाँ ग्राकर !

प्रश्न उठता है कहाँ ग्राकर ? यदि जायस नगर कहा जाये तो क्या जायसी जायस के रहने वाले नहीं थे। डा० ग्रियर्सन ग्रौर डा० सुधाकर तो इस मत के पक्षपाती हैं कि जायसी कहीं ग्रौर रहते थे फिर जायस नगर में ग्राकर उन्होंने कविता का सृजन किया। परन्तु यह बात तर्कसंगत इसलिये नहीं ठहरती क्योंकि 'जायस नगर' वाले इस बात को स्वीकार नहीं करते हैं। क्योंकि उस नगर में जायसी के घर वाले ग्रभी तक विद्यमान हैं। जायसी ने 'पद्मावत' में ग्रपने ग्रन्य चार मित्रों का परिचय भी दिया है जिनमें से दो के वंशज तो ग्रभी

तक विद्यमान हैं। जायसी का वंश आगे चला ही नहीं, परन्तु इनके भाई का खानदान विद्यमान है। जिनके पास इनका वंश-वृक्ष है, यद्यपि वह वंश-वृक्ष बिल्कुल ठीक नहीं, उसमें कुछ न कुछ गड़बड़ अवश्य है।

जायसी का व्यक्तित्व शारीरिक रूप में इतना महान नहीं था ऐसा माना जाता है। कहा नहीं जा सकता कि यह बात कहाँ तक सत्य है। कुछ लोगों के अनुसार वे जन्म से ही कुरूप और काने थे, ऐसा माना जाता है। परन्तु अधिकतर लोगों का कहना है कि शीतला या अर्द्धाङ्ग रोग से उनका शरीर विकृत हो गया था। उनके काने होने का उल्लेख उन्होंने स्वयं ही किया है—"एक नयन कवि मुहम्मद गुनी।" उनकी कौन सी आँख फूटी हुई थी, इसका उल्लेख भी इस प्रकार मिलता है—

मुहम्मद बाईं दिसि तजा, एक सरवन, इक आँखि ॥

इस कथन से तो यह भी प्रतीत होता है कि उन्हें बायें कान से भी सुनाई नहीं देता होगा। ऐसा सुना जाता है कि जायसी बहुत कुरूप थे और सम्भवतः जन्म से ही इस प्रकार के थे। जायस में यह बात प्रसिद्ध है कि वह एक बार शेरशाह के दरबार में गये। वहाँ शेरशाह उनके भद्दे और कुरूप चेहरे को देखकर हँस पड़ा। जायसी ने अत्यन्त शान्त भाव से कहा—"मोहि का हँससि, कि कोहरहिं" अर्थात् तू मुझ पर हँसता है कि उस कुम्हार (भगवान) पर जिसने मेरा निर्माण किया है। इस पर शेरशाह ने लज्जित होकर क्षमा-याचना की। इससे तो यह स्पष्ट प्रकट होता है कि जायसी जन्म से ही ऐसे कुरूप थे। कोई शीतला आदि का प्रभाव नहीं था। क्योंकि उनका तो निर्माण ही भगवान ने इस प्रकार का किया था।

मलिक मुहम्मद जायसी एक गृहस्थ किसान के रूप में जायस में रहते थे। जायसी का व्यक्तिगत जीवन अत्यन्त दुख भरी घटनाओं का उल्लेख मात्र है। कवि इसलिये इतना आध्यात्मवादी है। इनकी प्रवृत्ति एक कोढ़ी को देखकर आध्यात्मवादी हुई थी। यह घटना इस प्रकार है—जायसी नियमपूर्वक अपना भोजन खेतों में कृषि करते-करते किया करते थे। वे खाना कभी अकेले नहीं खाते थे। एक बार इधर-उधर देखने पर भी जायसी को खाना खिलाने

के लिए कोई साथी न मिला। उन्होंने एक कोढ़ी को आग्रहपूर्वक अपने साथ बिठा लिया। कोढ़ी के शरीर से कोढ़ का कुछ मवाद भोजन में भी चू पड़ा। जायसी ने वह हिस्सा उठाकर खा लिया। इसके बाद कोढ़ी अदृश्य हो गया। इस घटना के उपरान्त जायसी की मनोवृत्ति ईश्वर की ओर प्रवृत्त हो गई। इस घटना का उल्लेख अखरावट में इस प्रकार मिलता है—

बुंदहि समुद्र समान, यह अचरज कासौं कहौं।
जो हेरा सो हेरान, मुहम्मद आपुहि आप में॥

ऐसा कहा जाता है कि जायसी के छः पुत्र थे। परन्तु मकान की छत के नीचे दबकर मर गये थे। इस संतति-वियोग ने उन्हें अधिक विरक्त और एकाकी बना दिया। कुछ दिन तो वे घरबार छोड़कर फकीर होकर घूमते रहे। जायसी अपने समय के एक सिद्ध फकीर माने जाते हैं। वे जहाँ-जहाँ घूमे ज्ञान की दृष्टि से लोगों ने इनका मान किया। अमेठी के राजा रामसिंह जी की श्रद्धा जायसी पर बहुत थी। सुना जाता है कि वे अपनी आयु के पिछले भाग में जंगल में ही रहे। इन्होंने राजा रामसिंह से यह कह दिया था कि मेरी मृत्यु किसी शिकारी द्वारा होगी। राजा रामसिंह ने इसलिए अपने आस-पास के जंगलों में शिकार खेलना बन्द करा दिया था। परन्तु होनहार को कौन रोक सकता है। कहा जाता है कि एक शिकारी ने व्याघ्रों से डर कर उस पर गोली चला दी, जाकर देखा तो व्याघ्र के स्थान पर जायसी घायल होकर मरे पड़े थे। कहते हैं कि जायसी अपने योगबल से इस प्रकार के रूप धारण कर लिया करते थे।

नसरुद्दीन हुसैन ने मलिक मुहम्मद जायसी का मृत्यु-काल ४ रजब ९४९ हिजरी कहा है। यह काल कहाँ तक ठीक है इसके विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता। यदि इसे ठीक मान लिया जाये तो जायसी इतने अल्पायु वाले नहीं ठहरते। इसके अनुसार तो जायसी की आयु ४९ वर्ष ही ठहरती है किन्तु यह मान्यता कदाचित् गलत कही जा सकती है क्योंकि पद्मावत के अन्त में उपसंहार करते समय जिस वृद्धावस्था का चित्रण इन्होंने किया है वह स्वानुभूत-सा जान पड़ता है। यदि वह ४९ वर्ष की आयु में मृत्यु को प्राप्त हो

गये होंगे तो इतना सच्चा चित्रण यौवनकाल की अवस्था में कर देना तर्क-संगत और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सत्य नहीं लगता। मृत्यु के विषय में अधिक मान्यता तो सन् १५४२ की है। निश्चय रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

जायसी की कब्र अमेठी के राजा के वर्तमान कोट से पौन मील के लगभग है। परन्तु यह कोट जायसी की मृत्यु के बहुत पीछे बना है। अतः यह प्रवाद है कि अमेठी के राजा को जायसी की दुआ से पुत्र हुआ और उन्होंने अपने कोट के पास उनकी कब्र बनवाई।

मलिक मुहम्मद जायसी निजामुद्दीन औलिया की शिष्य परम्परा में से थे। इस परम्परा की दो शाखाएँ थीं। पहली शाखा पीरों की परम्परा में है और दूसरी शिष्यों वाली है। जायसी ग्यारहवें शिष्य थे। पद्मावत और अखरावट में इन्होंने गुरु परम्परा का उल्लेख बड़े विस्तार के साथ किया है। डाक्टर ग्रियर्सन शेख मोहदी को ही इनका दीक्षा-गुरु मानते हैं। परन्तु पद्मावत की गुरु-बन्दना से यह बात स्पष्ट दिखाई नहीं देती। पद्मावत में जायसी ने दोनों पीरों का उल्लेख भी किया है। वे सैयद अशरफ थे या मुरीद—उन्होंने इस प्रकार लिखा है—

> सैयद असरफ पीरपिया राजेइ मोहि पंथ दीन्ह उजियारा।
> गुरु मोहिदी खेवक मैं सेवा चलै उताइल जेहि कर खेवा।

इस प्रकार अखरावट में भी इन्होंने गुरु के विषय में उल्लेख किया है—

> कही सरीअत चिरती पीरू। उधरी असरफ औ जहं गीरू।
> या-पाएऊँ गुरु मोंहिदी दीठा। मिला पंथ सो दरसन दीठा॥

इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि 'पीरू' शब्द का प्रयोग इनके दीक्षा-गुरु सैयद अशरफ के लिए ही हुआ हो और पीछे से उन्होंने मुहीउद्दीन की सेवा करके कुछ ज्ञानोपदेश और दीक्षा प्राप्त की हो।

सूफी मुसलमानों के अतिरिक्त जायसी का सत्संग हिन्दू साधुओं से भी रहा

जिनसे उन्होंने बहुत जानकारी प्राप्त की। हठयोग, वेदान्त और रसायन आदि की बहुत सी बातें इनकी रचना में यत्र तत्र मिलती हैं।

जायसी में चरित्र सम्बन्धी विशेषता भी कम नहीं थी। वे बड़े भावुक, सहृदय, सम्वेदनशील और भगवद्भक्त थे। वे अपने समय के पहुँचे हुए सिद्ध फकीर माने जाते थे। कहा जाता है कि वे योगबल के द्वारा दूसरा रूप भी धारण कर लेते थे। जैसा कि इनकी मृत्यु सम्बन्धी घटना से विदित होता है। इन्होंने कबीर की भाँति अपने नये ही पथ की नींव धरने का साहस नहीं किया। वे समाज में विशेष कर्त्तव्यों का पालन करते थे। सामान्य-मनुष्य-धर्म-के सच्चे अनुयायी थे। सच्चे भक्त में दैन्य होने की आवश्यकता होती है जायसी में वह कूट-कूटकर भरी हुई थी। इनका हृदय भगवत्पूर्ण था इसलिए अहम् भाव को वहाँ स्थान नहीं मिला। कबीर की तरह ये "ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया", कहने का साहस नहीं कर सके क्योंकि मनुष्य त्रुटियाँ करता है इसलिए शरीर रूपी चादर पर कोई पाप रूपी दाग उसमें न लगे यह असम्भव है। कबीर की भाँति इन्होंने किसी भी धर्म का खण्डन नहीं किया। इनके हृदय में प्रत्येक धर्म के प्रति औदार्य्य था। अपने धर्म में कट्टर होते हुए भी वह किसी भी धर्म की कटु आलोचना नहीं करते थे। वे प्रत्येक वर्ग की महत्ता को स्वीकार करते थे। वह सर्वज्ञ होते हुए भी अपने ज्ञान को पण्डितों द्वारा दिया गया प्रसाद मानते थे—

हौं पण्डित केर पछलगा। किछु कहि चला तबल देह उगा।

यद्यपि कबीरदास जी की प्रवृत्ति में और इनकी प्रवृत्ति में बहुत साम्य था, यद्यपि कबीर हर एक के मत का खण्डन करते थे फिरभी इन्होंने कबीर को एक बड़ा साधक कहा है।

ना नारद तब रोय पुकारा। एक जोलाहे सौं मैं हारा॥

इससे प्रकट है कि जायसी में अहम् भाव नाम मात्र को भी नहीं था। इस प्रकार जायसी को कई लोग बड़ा भारी सिद्ध योगी मानने लगे और कई इनके शिष्य बन गये। अभी तक भी इनके कई चेले पद्मावत के बारहमासे को गा-गाकर भिक्षा मांगते फिरते हैं। पद्मावत इनका एक ऐसा ग्रंथ है

जिसको पढ़कर यह ज्ञात होता है कि जायसी का हृदय अत्यन्त कोमल, भावुक और प्रेम की पीर से भरा हुआ था। इसमें उन्होंने लोकपक्ष और भगवत्-पक्ष दोनों की गूढ़ता और गम्भीरता का निरूपण किया है। जायसी की दूसरी पुस्तक अखरावट है। इसमें वर्णमाला के एक-एक अक्षर पर सिद्धान्त सम्बन्धी कुछ बातें लिखी हैं। उनकी तीसरी पुस्तक आखिरी कलाम है। यह भी छोटी सी है। मरणोपरान्त जीव की दशा और कयामत के अन्तिम न्याय का वर्णन इसमें मिलता है। कुल मिलाकर जायसी की पुस्तकें तीन हैं। जिनमें जायसी की कीर्ति का आधार पद्मावत ही है। अब क्रम से तीनों की विषद् विवेचना कर देना ठीक होगा।

पद्मावत—यह ग्रन्थ जायसी की कीर्ति का आधार स्तम्भ है। इसमें सिंहलद्वीप की राजकुमारी पद्मावती और चित्तौड़ के राजा रत्नसेन की प्रसिद्ध प्रेम-कथा का वर्णन है। हीरामन सूआ इन दोनों प्रेमियों के बीच मध्यस्थ का कार्य करता है। जायसी ने इस कथा को इतनी तन्मयता से लिखा है कि इस प्रेम-कथा को पढ़कर व्यक्ति हर प्रकार के भेद-भाव को भूलकर प्रेम सरोवर में गोता लगाने लगता है। यह ग्रंथ मुसलमानों और हिन्दुओं दोनों के घरों में धार्मिक ग्रन्थ की भाँति पूजा जाता है। भगवत प्रेम के पुजारी साधकों के लिए यह ग्रंथ ईश्वर तक पहुँचाने का एक साधन है। जायसी स्वयं प्रेम के परमाणुओं से बने थे इसलिए इस ग्रन्थ में प्रेम के अतिरिक्त कुछ भी दिखाई नहीं देता। पद्मावत में उन्होंने भारत के राजकुमारों और राजकुमारियों, भारतीय नारियों के रूप और सौन्दर्य, शील, उदारता और पराक्रम, धर्म की महत्ता, पतिव्रत धर्म आदि की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। जायसी से पहले किसी कवि ने प्रकृति को पहचानने की चेष्टा नहीं की। जायसी सर्व प्रथम थे जो भारतीय जनता की चित्तवृत्ति को समझने और उसे वाणी देने में समर्थ हुए यद्यपि वे जाति से मुसलमान थे फिर भी उनकी वैष्णवता ने हिन्दुत्व की कथा को मीठी कुनैन की भाँति पद्मावत के रूप में लोगों को दिया और अप्रत्यक्ष रूप से हिन्दू-मुस्लिम-वैमनस्य को दूर किया।

'पद्मावत' ठेठ अवधी में लिखा गया ग्रन्थ है जिसमें साहित्यिक भाषा का पुट कम मात्रा में मिलता है। काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से पद्मावत अद्वितीय ग्रन्थ है। इसमें ऐतिहासिक और काल्पनिक तत्त्वों का सम्मिश्रण कवि ने बड़ी खूबी के साथ किया है। इन दोनों के मिश्रण ने पद्मावत का स्थान हिन्दी साहित्य में महत्त्वपूर्ण कर दिया है। पद्मावत की नवीन भावधारा ने बह कर जनता के भय और अविश्वास को प्रेम की पद्धति के द्वारा धो डाला। पद्मावत में यद्यपि शृङ्गार एकांगी है परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि इसमें संसार के लिये संदेश नहीं। कवि का कहना है कि—

जो नहीं सीस प्रेम पथ लावा।
सो प्रिथिवी महँ काहे का आवा॥

पद्मावत प्रबन्धकाव्य में मरिण रूप है। प्रेम के अतिरिक्त अन्य भावनाएँ भी क्रमवश आ गई हैं जिससे कथासूत्र में किसी प्रकार का व्याघात पैदा नहीं हुआ। जायसी ने अपने पद्मावत की कथा में आध्यात्मिक अभिव्यंजना रखी है। सारी कथा के पीछे सूफी सिद्धान्तों की रूपरेखा है। पर जायसी इन आध्यात्मिक संकेतों को पूर्ण रूप से निभा नहीं सके। उसका कारण यह था कि जायसी ने मसनवी शैली का आधार लिया था इसलिये छोटी से छोटी बात का विस्तार इन्होंने अधिक किया जिससे विश्लेषण में ही सारी आध्यात्मिकता दब गई। जायसी के द्वारा किया गया विलास वर्णन ही आध्यात्मिकता के चित्र को अधिक अस्पष्ट कर देता है। फिर भी कहना न होगा कि 'पद्मावत' अपने में एक अनन्य प्रेम काव्य है जिसका स्वरूप हमें अन्यत्र नहीं मिल सकता।

आखिरी कलाम—जायसी का दूसरा ग्रन्थ "आखिरी कलाम" है। आखिरी कलाम का निर्माण काल सं० ९३६ दिया गया है। उस समय बादशाह बाबर का राज्य था। कवि ने उसके पराक्रम की चर्चा का उल्लेख भी इसमें किया है। जान पड़ता है कि कवि ने पहले इस पुस्तक को आरम्भ किया फिर उसे छोड़कर पद्मावत लिखनी शुरू की, फिर पद्मावत की रचना छोड़ कर इसे पूरा किया। इनकी यह युक्ति "जायस नगर धरम अस्थानू तहाँ आइ कवि कीन बखानू" इस बात को सिद्ध करती है। पद्मावत की रचना

समाप्त करने के अवसर पर जायसी बहुत वृद्ध थे यह उनकी रचना से स्पष्ट है। आखिरी कलाम इनके अन्तिम दिनों की लिखी हुई पुस्तक जान पड़ती है। इसमें इन्होंने जन्म काल समय से होने वाले भूकम्प का भी वर्णन किया है जिससे सारे संसार के भयभीत होने का वर्णन भी है। इस ग्रथ में इन्होंने कयामत के समय हजरत मुहम्मद साहब की महत्ता का वर्णन किया है। इन्होंने अपने सम्प्रदाय के लोगों के गुनाहों को अपने ऊपर लेकर अपने अनुयायियों को परमात्मा के दर्शन कराये हैं और उन्हें वहिश्त के सुखों का उपभोग कराया है।

अखरावट—इसका सम्बन्ध अक्षरों से है। इनमें कबीर की बाराखड़ी की पद्धति पर एक-एक वर्ण का मूल उदगम तथा बनावट पर मनोवैज्ञानिक दृष्टि से प्रकाश डाला है। इसके साथ अखरावट में भी इन्होंने पद्मावत की तरह एक ओर सूफीमत का वर्णन किया है दूसरी ओर वेदान्त का। जैसे सूफीमत का वर्णन देखिये—

साईं केरा बार जो थिर देखै औ सुनै।
नई-नई करै जुहार मुहम्मद निति उठि पाँच वैर॥

वेदान्त का—

जो किछु है सो है सब, ओह बिनु नाहिन कोई।
जो मन चाह सो किया जो चाहे सो होई॥

इस प्रकार जायसी ने हिन्दू और मुसलमान दोनों जातियों की संस्कृति का चित्र अपनी रचनाओं में प्रदर्शित किया है। उसके साहित्यिक दृष्टिकोण को निर्मित करने में दोनों संस्कृतियों ने आश्रय दिया।

जायस वाले जायसी की इन तीनों पुस्तकों के अतिरिक्त दो पुस्तकें और भी बताते हैं। "पोस्ती नामा" और "नैनावत"। परन्तु इनके विषय में निश्चित कुछ नहीं कहा जा सकता। कुछ भी हो जायसी हिन्दी साहित्य के प्रमुख कवियों में अपने पद्मावत के कारण ही माने जाते हैं। यही इनकी कीर्ति का आधार है। शेष पुस्तकें तो साधारण कोटि की हैं।

प्रश्न ३—प्रेमाश्रयी शाखा का विकास बतलाते हुए उसमें जायसी का स्थान निश्चित कीजिये ।

उत्तर—हजरत मुहम्मद के देहावसान हो जाने पर उनके उत्तराधिकारियों (खलीफा) का युग आरम्भ होता है । उन्होंने अपने प्रयत्नों द्वारा शाम, फिलीस्तीन, मिस्र, ईरान, स्पेन एवं तुर्किस्तान आदि देशों तक अपना राज्य स्थापित कर लिया। इस राजनैतिक और आर्थिक विस्तार के कारण तत्कालीन उमैय्या तथा अब्बास वंश तक के शासन काल में ऐश्वर्य और वैभव पर्याप्त मात्रा में बढ़ गया। प्रथम चार खलीफा बड़े ही धर्मपरायण, कर्त्तव्यशील, शुद्ध हृदय वाले तथा धैर्यशील व्यक्ति सिद्ध हुए परन्तु इनके अनन्तर आने वाले व्यक्तियों में उनकी कोई व्यक्तिगत विशेषता दिखाई न दी। वे धार्मिक प्रचार की अपेक्षा राज्य विस्तार एवं शासनाधिकार आदि की ओर अधिक प्रवृत्त होते जान पड़े, फलतः प्रथम चार खलीफाओं के जीवन का आदर्श लुप्त सा हो गया और धर्म की भावनाओं में बाहरी बातों का भी समावेश होने लगा। इस प्रकार सम्पर्क के बढ़ने से सांस्कृतिक और सामाजिक प्रभावों का बढ़ते जाना भी अनिवार्य हो गया और जिसके कारण सर्वत्र सामंजस्य लाने के लिये धार्मिक ग्रन्थों का पठन-पाठन आरम्भ हुआ। इस्लामी धर्म की इस प्रकार कलेवर-वृद्धि होने से साम्प्रदायिक भावनाओं और अन्धविश्वास की मात्रा बढ़ गई। इस प्रकार सूफी-मत का सर्वप्रथम आरम्भ ऐसे ही वातावरण की प्रतिक्रिया स्वरूप हुआ।

एक प्राचीन परम्परा के अनुसार यह कहा जा सकता है कि सर्वप्रथम शेख अबू हासिम को सूफी कहा गया। उसके पश्चात् उस युग के अन्तिम चरण तक में कई सूफी सन्त हुए। इस प्रकार हिजरी सन् की दूसरी शताब्दी के अन्तिम चरण में सूफी सन्तों की खूब प्रतिष्ठा बढ़ी और वे चरित्रवान् व्यक्ति कहलाने लगे। इसी प्रकार द्वितीययुग में भी सूफी साहित्य का क्रमिक विकास होता गया। सूफी मत का वास्तविक इतिहास उसमें तृतीय युग से ही माना जाता है। क्योंकि प्रथम युग में प्रधान सूफी लोगों के जीवन वृत्त एवं उपदेशों का संग्रह ही किया जाता था। द्वितीय युग में प्रमुख सूफी पण्डितों के समय-समय पर किये गये कथनों को क्रम बद्ध प्रणाली में रखा गया

परन्तु तृतीय युग में सूफियों के मूल भूत सिद्धान्तों को अपने-अपने ढंग से रखने की चेष्टा आरम्भ हो गई थी। वह युग सूफी मत के प्रचार की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्व का युग है और इस कार्य में धर्माचार्यों के अतिरिक्त कवियों ने भी पूरा सहयोग दिया। इस प्रकार तृतीय युग तक सूफी धर्म का प्रचार संसार के कोने-कोने में फैल गया। इस्लाम धर्म का प्रचार अधिकतर तलवार के बल पर हुआ परन्तु सूफी मत का प्रचार बल प्रयोग की अपेक्षा चमत्कार-पूर्ण चेष्टाओं से हुआ। इस प्रकार सूफी काव्य की रचना भी विशेषकर मुसलमानों के कोमल हृदय की अभिव्यक्ति है। जिस समय मुसलमानी सत्ता भारतवर्ष पर पूर्ण रूप से अपना राज्य स्थापित कर चुकी थी तो हिन्दू और मुसलमान दोनों में परस्पर स्नेह-भाव के जागरण की आकांक्षा पैदा हुई। मुसलमानों का एक दल उस समय ऐसा भी था जो बलात् हिन्दुओं को मुसलमान बना रहा था और एक दूसरा वर्ग ऐसा था जो केवल हिन्दू धर्म के प्रति उदार ही नहीं वरन् उस पर आस्था भी रखता था। इस प्रकार जहाँ वे एक ओर सूफी धर्म के प्रचार की भावना में विश्वास रखते वहाँ दूसरी ओर हिन्दू धर्म के आदर्शों को सौजन्य की दृष्टि से देखते। बस इसी भावना के आधार पर ही प्रेम काव्य की रचना हुई।

स्थूल रूप से यह कहा जा सकता है कि सूफी मत भारतवर्ष में चार सम्प्रदायों के रूप में आया।

१—चिश्ती सम्प्रदाय—बारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में।

२—सुहरावर्दी सम्प्रदाय—तेरहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध।

३—कादरी सम्प्रदाय—पन्द्रहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध।

४—नक्शवंदी सम्प्रदाय—सोलहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध।

इन सभी सम्प्रदायों के अधिक विस्तार में जाने की आवश्यकता नहीं फिर भी इनके विषय में इतना कह देना पर्याप्त होगा कि इन सम्प्रदायों का न तो कोई विशेष संगठन था और न ही राजाश्रय। वे अपनी व्यक्तिगत महत्ता और साधना के अधिकार पर ही जनता और राज्य में श्रद्धा और आदर की सम्पत्ति प्राप्त करते थे। ये सूफी सन्त धार्मिक जीवन में अत्यन्त

सरल और सहिष्णु थे। इनके जीवन में उदारता और विशालता थी। धार्मिक स्थानों का परिभ्रमण कर अनुभवजन्य उपदेश देते। इन्होंने अपने ज्ञान-रूपी प्रकाश के स्तम्भों से अपने उपदेशों का आलोक दूर-दूर तक विरोधी श्रेणियों में भी पहुँचा दिया। इन्होंने अपने आकर्षण और प्रेम के माध्यम से अन्य मतावलम्बियों को व्यक्तिगत सात्विक प्रभाव में लाकर सूफी सन्तों के अनुयायियों में परिवृद्धि की। ये चारों सम्प्रदाय अपने मूल सिद्धान्तों में समान थे। धार्मिक और सामाजिक दोनों पक्षों में सभी सम्प्रदाय अत्यन्त उदार थे। ये Unity of God तथा Transcendental God-hood में विश्वास रखते थे। सामाजिक समानता भी थी। यदि कोई अस्पृश्य जाति का व्यक्ति भी धर्म परिवर्तन कर इस सम्प्रदाय में दीक्षित होना चाहे तो हो जाता था। वर्ण भेद, वर्ग भेद का अन्तर नहीं था। उनका सात्विक जीवन ही उनके व्यक्तित्व और श्रेष्ठता का सबसे बड़ा मापदण्ड था।

इन चारों सम्प्रदायों का प्रभाव ईश्वरोन्मुखी प्रवृत्ति होने के कारण साधारण जनता पर विशेष मात्रा में पड़ा। हिन्दू-समाज के निम्न दल के व्यक्ति, जिन्हें समाज में उचित सुविधाएँ प्राप्त नहीं होती थीं, इन सम्प्रदायों में दीक्षित होते रहे।

इन सम्प्रदायों से प्रभावित प्रेमकाव्य का परिचय तो वैसे चारणकाल से ही मिल जाता है। अतः धार्मिक दृष्टि से प्रेमकाव्य का आरम्भ "चन्दावत" (चारणकाल में) से ही मानना चाहिये। इसके पश्चात् जायसी से पूर्व कई प्रेम काव्य लिखे गये—स्वप्नावती, मुग्धावती, मृगावती, खंडरावती, मधुमालती, प्रेमवती। इनके अतिरिक्त जो शेष हैं उनका कोई विशेष प्रमाण नहीं मिलता। एक और भी काव्य प्राप्त है जिसे लक्ष्मणसेन पद्मावती कहते हैं। यह ग्रन्थ सम्वत् १५१६ में लिखा गया। इसको लिखने वाला "दग्मौ" कहलाता है। इसमें अधिकतर वीर रस है। अपभ्रंश काल के ग्रन्थों के समान इनमें बीच-बीच में संस्कृत में श्लोक और प्राकृत में गाथा है।

मृगावती—इसके रचियता शेख कुतबन थे जो शेख बुरहान के शिष्य थे। इनके विषय में जो कुछ भी उपलब्ध है उनके लिए यह पद लिखा जाता है—

सेष बुडन जग साचा पीरू । नाम लेत सुध होय शरीरू ।

कुतबन नाम लेइ पधारे । सरवर दो दुहुँ जग नीर भरे ।।

ये सूफी थे । हिन्दी कविता करते समय अपना नाम रंजन रखा करते थे। कुतबन ने इस रचना की तिथि भादों वदी ६, १५६० दी है । उनका कहना है कि यह कथा तो पहले से चली आ रही है मैंने तो केवल इसे दोहा, चौपाई, सोरठा, अरिल्ल आदि में लिपि बद्ध किया है । मृगावती की प्रेम कथा लौकिक प्रेम की कथा है। जिसमें अलौकिक प्रेम का पूर्ण संकेत मिलता है । कंचनपुर के राजा की राजकुमारी मृगावती पर चन्द्रगिरि के राजा का पुत्र मोहित हो जाता है । वह प्रेम में योगी बनकर निकल जाता है। अनेक कष्ट झेलने के उपरान्त वह राजकुमारी को प्राप्त करता है। काव्य में कोई विशेष सौंदर्य नहीं है । फिर भी ईश्वर विषयक संकेत ठीक दिया गया है। भाषा अवधी और दोहा चौपाई की पद्धति है। न जाने इसका मूल आदर्श क्या था किन्तु इसमें आए हुए अलौकिक प्रसंगों से जान पड़ता है कि इस पर शामी परम्परा का प्रभाव था । कथा को भारतीय संस्कृति के वातावरण में रखकर सजाने से कुतबन को हम प्रेम गाथा के सूफी कवियों का पथ प्रदर्शक कह सकते हैं।

मधुमालती—इसकी अब तक केवल खण्डित और अधूरी प्रतियों के ही उपलब्ध होने के कारण उसके रचयिता मलिक मंझन व शेख मंझन के संबंध में कई विवाद ग्रस्त बातें सुनी जाती हैं। अभी तक इसकी एक ही प्रति रामपुरी स्टेट लायब्रेरी में प्राप्त हो सकी है। अब इतना तो निश्चय हो गया है कि इसका रचनाकाल १५४५ ई० है। इसमें संदेह नहीं कि मधु-मालती के कारण मंजन का नाम प्रेमगाथा के सूफी कवियों में अमर हो गया। "इस सरल सार जग प्रेम" का आदर्श लेकर चलने वाले कवियों ने अपनी रचना में ऐसी सहृदयता दिखाई है जो अन्यत्र दुर्लभ है। कवि का हृदय कोमल था इसलिए प्रेमगाथा भी आकर्षक और भावात्मक है। कल्पना भी इसमें यथेष्ट है। उसके द्वारा निस्वार्थ प्रेम की अभिव्यंजना सुन्दर रूप से होती है। इसमें कनेसर के राजा के मनोहर और महारस की राजकुमारी मधुमालती के प्रेम का वर्णन है। कथा में वर्णनात्मकता का अंश

अधिक है। प्रेम के चित्रण में विरह को अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है क्योंकि विरह ही मनुष्य को समझने के लिए महत्त्वपूर्ण साधन है। कहा जाता है कि यह कवि अत्याधिक लोकप्रिय रहा है। इसके पीछे इसी के कथानक को लेकर कई उर्दू कवियों ने अपनी मसनवियों की रचना की। इस कवि की यह भी विशेषता रही है कि इसने प्रेमभाव को प्रत्यक्ष दर्शन के आधार पर जाग्रत कराया है। यही बात आगे चलकर 'जानकवि' की "मधुमालती" में दीख पड़ती है।

चित्रावली—प्रेम काव्यों में 'चित्रावली' का नाम भी बड़े गौरव के साथ लिया जा सकता है। 'चित्रावली' को हम 'पद्मावत' की छाया कह सकते हैं। पद्मावत में जिन-जिन विषयों पर प्रकाश डाला गया है उन्हीं विषयों का चित्रावली में वर्णन मिलता है। परन्तु कथा पद्मावत की भाँति इतिहास से सम्बन्धित नहीं। कथा अधिक कल्पना-प्रसूत है। इसके सम्बन्ध में स्वर्गीय जगमोहनदास लिखते हैं कि—"कवि ने इस काव्य में स्थान-स्थान पर वेदान्त अद्वैतवाद की झलक दिखाई है।"

चित्रावली की कथा में घटनाओं की शृङ्खला बहुत लम्बी और कौतूहल पूर्ण है। उसमें अनेक अलौकिक बातों का भी समावेश है। कथा को विस्तृत करने की कष्ट-कल्पना की गई है। दो राजकुमारियों से विवाह करने से पूर्व जितनी कठिनाइयाँ आती हैं उनकी विस्तृत विवेचना चित्रावली में हुई है। कल्पना के साथ-साथ आध्यात्मिकता का आश्रय पूरा पूरा लिया गया है। सरोवर खण्ड में चित्रावली का जल में छिपना ईश्वर के अमूर्त होने से साम्य रखता है। सखियों के द्वारा उसे खोजना आत्मा की जिज्ञासा वृत्ति का द्योतक है। इसके साथ ही चित्रावली में नीति के दर्शन भी होते हैं। 'उसमान' की लोकोक्तियाँ समस्त ग्रँथ में भरी पड़ी हैं। चित्रावली में भूगोल का भी यथेष्ट वर्णन है। यह सब कुछ कवि की बहुज्ञता का सूचक है।

पद्मावत—यह एक प्रेम आख्यान है। इसका पूर्वार्द्ध काल्पनिक और उत्तरार्द्ध ऐतिहासिक है। पूर्वार्द्ध में तोते के द्वारा पद्मावती के रूप की प्रशंसा

सुनकर, रत्नसेन के द्वारा सिंहलद्वीप जाने, तथा शिवाजी की कृपा से पद्मिनी को प्राप्त करने तक का वर्णन है। यह भाग लोक वार्ता पर आधारित है। उत्तरार्द्ध में राघव चेतन का अलाउद्दीन को लाना और रत्नसेन का देवपाल के हाथों मारा जाना, यद्यपि इतिहास सम्मत नहीं फिर भी आधार ऐतिहासिक ही है। इस ग्रन्थ पर नाथ पंथ का प्रभाव है। क्योंकि सिंहलद्वीप नाथ पंथियों की सिद्ध पीठ है। हठयोग की क्रियाओं का प्रभाव रत्नसेन पर स्पष्ट दिखाया है जब वह अनेक कष्ट सहन करता हुआ पद्मावती के पास जाता है। इस प्रकार लौकिक प्रेम के सहारे आध्यात्मिक तत्वों की अभिव्यक्ति की गई है। पद्मावती काव्य के चरित्र मसनवियों के ढङ्ग पर रचे गये हैं। काव्य के आरम्भ में गुरू, रसूल, बादशाह आदि की वन्दना है। सारा काव्य अवधी में दोहा चौपाई की पद्धति के आधार पर लिखा गया है। स्थान-स्थान पर घटनाओं के शीर्षक दिये गये हैं। सारा महाकाव्य खण्डों में विभाजित है। सारी कथा हिंदू जीवन तथा संस्कृति से सम्बन्ध रखती है। इसमें लौकिक प्रेम द्वारा आध्यात्मिक प्रेम का परिचय निम्न पद में रूपक के आधार पर मिलता है।

तन चितउर मग राजा कीन्हा, हिय सिंहल बुद्धि पदमिन चीह्ना।
गुरू सुआ जेई पंथ दिखावा, बिन गुरु जगत को निरगुन पावा ॥

पद्मावत यद्यपि सर्गबद्ध नहीं है तथापि उसके कथा निर्वाह में कौशल है। इसके अतिरिक्त संघर्षमय विस्तार, विचारों की उदात्तता, प्रकृति चित्रण, वर्ण्य विषयों का समावेश, रस-परिपाक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से यदि इसे महाकाव्य की संज्ञा दी जाये तो कोई अत्युक्ति न होगी। आधिकारिक और प्रासङ्गिक कथाओं का निर्वाह अच्छी तरह से हुआ है। वर्णन लम्बे-लम्बे और धारावाहिक हैं।

विरह वर्णन की दृष्टि से पद्मावत उत्कृष्ट काव्य है। प्रेम के संयोग और वियोग का परिपाक अच्छा हुआ है। नागमती का विरह एकांगी है परन्तु पद्मावती और रत्नसेन का विरह उभयपक्षी है। विरह वर्णन में यद्यपि कहीं कहीं अत्युक्तियाँ हैं तथापि ऊहात्मक नहीं। नागमती के लिए सारा संसार ही विरहमय है। वह कहती है।—

नैनन चली रक्त की धारा। कंथा भोज भएउ रतनारा।
सूरज बूढ़ि उठा हुइ ताता। औ मजीठ टेसू बन राता॥
औ बसन्त राता वनसपती। और राते सब जोगीजती॥

संवेदना का आभास रस्किन के शब्दों में (Pathetic Falacy), मिलता है।

जायसी के इस काव्य में रहस्यवाद के सभी अङ्ग आ गए हैं। सूफी काव्यों का रहस्यवाद द्वैत से अद्वैत को पहुँचता है। उसमें कबीर की बूँद और समुद्र का तादात्म्य नहीं बल्कि प्रेम की पीर के कारण अखिल संसार को आराध्यमय या तुलसी की तरह सियाराममय माना गया है। जायसी के इस महाकाव्य में उपनिषदों का भी प्रतिबिम्ब मिलता है—अर्थात् सारा रूपात्मक जगत ब्रह्म का प्रतिबिम्ब है। देखिये आत्मा और परमात्मा का एकाकार जायसी ने किस प्रकार किया है—

जब लगि गुरु हौं अहा न चीह्ना।
कोटि अन्तरपट बीचहि दीह्ना।
जब चीह्ना तब और न कोई।
तन मन जिउ जीवन सब सोई॥

तब असली साधक में अहंकार नहीं रहता। कबीर के शब्दों में 'जब मैं था तब गुरु नहीं, जब गुरु हैं हम नाहीं।'

कबीर और जायसी के रहस्यवाद में केवल एक यही अन्तर है कि कबीर ने आराध्य को अपने ही भीतर देखा है परन्तु जायसी का आराध्य सारे संसार में व्याप्त है।

भाषा और छन्द—कला पक्ष की दृष्टि से पद्मावत उच्च श्रेणी में रखा जा सकता है। इसकी भाषा अवधी है। रामचरितमानस की भाषा संस्कृत गर्भित अवधी है तो इसकी ग्रामीण या पूर्वी अवधी है। पद्धति दोहा चौपाई की है। काव्य में विशेष कर व्यंजना का प्राधान्य है। समासोक्ति,

अन्योक्ति और रूपक का वाहुल्य है ही, इसके अतिरिक्त भी अन्य अलङ्कार आये हैं। जायसी ने शब्दालङ्कारों की अपेक्षा अर्थालङ्कारों को प्रधानता दी है। उपमाओं द्वारा सूक्ष्म तत्वों की व्याख्या की है। उपमाओं में भी विराट भावना की झलक मिलती है। जायसी ने अपने पांडित्य प्रदर्शन के चक्कर में पड़कर कई प्रकार की भूलें भी करदी हैं। फिर भी लोक ज्ञान का वैसा ही आभास मिलता है जैसा कि एक सिद्धहस्त कवि के लिये अपेक्षित होता है।

संक्षेप में जायसी के काव्य की सबसे बड़ी विशेषता हिन्दू और मुस्लिम संस्कृतियों का अपूर्व समन्वय है। कथा को मसनवी ढङ्ग से लिखा गया है। प्रेम तत्व की अभिव्यंजना व्यापक और गम्भीर है जहाँ प्रेमी अपने आत्म-विकास और आत्म-बलिदान का परिचय देता है। वस्तु वर्णन में भावों को अधिक प्रधानता मिली है। कथोपकथन सुन्दर और पटु है। पुनरुक्तियाँ अधिक हैं। अनावश्यक पांडित्य प्रदर्शन भी कई स्थानों पर हुआ है। च्युत-संस्कृति दोष जहाँ तहाँ मिलता है। इतना होने पर भी इस काव्य को हम रामचरितमानस के बाद श्रद्धापूर्ण स्थान देते हैं।

प्रेमाश्रयी शाखा में इन प्रेम-कथाओं के अतिरिक्त कुछ ऐसी भी कथाएँ लिखी गईं जो सम्पूर्णतः आख्यानक थीं। उनमें प्रेम के मनोविज्ञान के अतिरिक्त अन्य कोई व्यंजना नहीं थी।

जैसे पद में सबसे पहली माधवानल कामकन्दला प्रेम-कथा है। दूसरी पुस्तक 'कुतुव शतक' है जिसमें कुतुवुद्दीन तथा मुसलमान किशोरी साहिवा का प्रेम वृतान्त है। इसके रचयिता का नाम अज्ञात है।

रस रतन—इस ग्रन्थ में सूर सैन की लम्बी कथा वर्णित है। इसमें स्थान २ पर नीति, शृङ्गार और काव्य के अनेक अङ्गों का वर्णन है। कनक मन्जरी—इसके लेखक कवि काशीराम हैं। यह भी प्रेम कथा ही है। मदन शतक फुटकर कवित्तों का संग्रह है जिसमें मदनकुमार और चम्पकमाल का प्रेम वर्णित है। इसके अतिरिक्त पद्य में विनोद रस, पुहुंपावती, नलदमन, हंस जवाहर, त्रियाविनोद, मधुमालती, इन्द्रावतो, प्रेम रत्न आदि हैं जो

सभी प्रेम गाथाएँ हैं। इन पद्य-बद्ध प्रेमगाथाओं के अतिरिक्त गद्य में भी उसी समय में प्रेम कहानियाँ लिखी गईं। जिनमें बात संग्रह, मोमलरी बात, देवरै नायक, देव री बात, सोहरण री बात आदि ग्रन्थ हैं। इनका प्रणयन काल, कवि परिचय अनिश्चित या अज्ञात है। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि ये सब प्रेम काव्य हैं और प्रेमाश्रयी शाखा के अन्तर्गत माने जाते हैं।

प्रेमाश्रयी शाखा के प्रायः सभी कवियों की विवेचना करने के पश्चात् कविवर जायसी को हम सर्वश्रेष्ठ और सर्वज्ञ मानते हैं। रामचन्द्र शुक्ल ने इन्हें धूल भरा हीरा कहा है। इन्होंने सर्वत्र कलापक्ष और भावपक्ष का सुन्दर और समन्वित रूप से निर्वाह किया है। जायसी की दृष्टि अधिक रूप में भाव पक्ष पर ही गई है। पद्मावत की रचना पांडित्य प्रदर्शन की दृष्टि से नहीं हुई है, 'अखराट' और 'आखिरी कलाम' में उन्होंने सिद्धान्त प्रियता दिखाई है। इन दोनों में उन्होंने सूफी सिद्धान्तों तथा दर्शनिक विचारों की पूरी-पूरी झलक दी है। पद्मावत का लक्ष्य तो केवल 'प्रेम की पीर' की व्यंजना करना ही रहा है।। इसी व्यंजना को और अधिक तीव्र करने के लिए उन्होंने एक कहानी का आश्रय लिया है। उसी को आदर्श मानकर उस कहानी को काव्य का रूप दिया और भारतीयता का पुट देकर और भी आदर्श बना दिया। प्रेमाश्रयी शाखा के सभी कवियों पर गम्भीर दृष्टि डालते हुए हमें यह कहने में कभी संकोच नहीं होगा कि जायसी भक्ति-मार्ग की निर्गुण धारा के जगमगाते हुए रत्न हैं। रामचरित मानस के बाद अवधी में पद्मावत ही सुन्दर लिखा गया। जायसी जिस प्रेम क्षेत्र में प्रविष्ट हुए हैं वह क्षेत्र अद्वितीय है। प्रेम तत्त्व उन्हें स्वयं को खो कर प्राप्त हुआ है।

पद्मावत में सर्वज्ञ जायसी की विरहिणी आत्मा तड़पती रही है। जायसी ने मुसलमानों के हृदय को इसी माध्यम से अहिंसक बना दिया। वे कबीर की तरह डाँटते फटकारते नहीं थे। वे प्रेम के हाथों से सहलाते थे, दुलारते थे क्षत-विक्षत तथा जर्जरित हृदय को अपनी प्रेम भरी मरहम पट्टी से भरते थे। इन्होंने प्रेम की वारि धारा बहा सर्वत्र सात्विकता और निर्मलता का

वातावरण पैदा किया। जायसी का एक ही लक्ष्य है कि लक्ष्य की ओर बाधाओं को सहते हुए बढ़ो। उस असीम को प्राप्त करो जो अपने प्रेम और सौन्दर्य से अखिल विश्व में मादकता भर रहा है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्रेमाश्रयी शाखा में जितनी कीर्ति पद्मावत लिख कर जायसी ने प्राप्त की, किसी अन्य ने नहीं। यद्यपि कई प्रेमाख्यान लिखे गये पर पद्मावत अपने में अद्वितीय और अनन्य है।

प्रश्न ४—सूफीमत के प्रमुख सिद्धान्तों का उल्लेख करते हुए बतलाइये कि जायसी ने कहाँ तक इन सिद्धान्तों का अनुकरण किया है, अथवा इनमें संशोधन किया है।

उत्तर—सूफीमत इस्लाम धर्म का ही एक प्रमुख अंग है। इस्लाम के मूल सिद्धान्तों से कुछ मतभेद रखने वाले और सादगी एवं आडम्बरहीनता को प्रधानता प्रदान करने वाले मुसलमान ही सूफी कहलाये। ये सफेद ऊन के वस्त्र पहनते थे। परमात्मा की सत्ता को सर्वव्यापक मानते और प्रेम द्वारा आत्मा तथा परमात्मा के सान्निध्य में विश्वास रखते थे। एकेश्वरवाद से इनका सिद्धान्त वेदान्त के अद्वैतवाद के अधिक निकट था। सूफीमत में सबसे प्रमुख भावना प्रेम है। सूफियों की मुख्य साधना है कल्ब (हृदय) और रूह द्वारा नफ्स। इन्द्रियों पर रौब गालिब करना आध्यात्मिक प्रेम इनकी पूँजी है। आलमलाहूत में आत्मा और परमात्मा का चिरन्तन प्रणय, मिलन की उपलब्धि इनकी साधना का मुख्य उद्देश्य है। आत्मा आशिक है और परमात्मा माशूक। दोनों में इश्क का मधुर सम्बन्ध है। सूफियों में साधक अपने को पुरुष और परमात्मा को स्त्री मानकर चलता है। उनका इश्क उग्र और बेचैनी से पूर्ण होता है, उनके यहाँ यह प्रेम ही सब कुछ है। सूफियों में साधक की चार अवस्थाएँ मानी जाती हैं—

१—शरीयत—अर्थात् धर्म-ग्रन्थों के विधिनिषेध का विधिवत् पालन। यह हमारे यहाँ का कर्म-काण्ड है।

२—**तरीकत** - अर्थात् बाहरी क्रिया-कलाप से परे होकर केवल हृदय की शुद्धता द्वारा भगवान का ध्यान। इसे हम उपासना काण्ड कह सकते हैं।

३—**हकीकत**—अर्थात् भक्ति और उपासना के प्रभाव से सत्य का सम्यक् बोध, जिससे साधक तत्त्व-दृष्टि-सम्पन्न और त्रिकालज्ञ होता है। इसे ज्ञान काण्ड कहा जा सकता है।

४—**मारफत**—अर्थात् सिद्धावस्था, जिसमें कठिन व्रत और मौनावस्था से साधक की आत्मा, परमात्मा में लीन हो जाती है। इसे मुक्ति काण्ड कह सकते हैं।

सूफीमत के प्रमुख रूप से तीन सिद्धान्त हैं—(१) ईश्वर तत्त्व, (२) सृष्टि तत्त्व और (३) मानव तत्त्व।

१—**ईश्वर-तत्त्व अर्थात् ईश्वर-सम्बन्धी मत**—ईश्वर-तत्त्व के सम्बन्ध में मुस्लिम दार्शनिक विचार प्रधानतः तीन प्रकार के दिखाई पड़ते हैं और उनके अनुसार तीन वर्ग भी स्थापित हो गये हैं। सर्वप्रथम वर्ग 'इजादिया' लोगों का है, जो ईश्वर का अस्तित्व जगत् से पृथक् स्वीकार करते हैं और इस बात में विश्वास करते हैं कि उसने इस सृष्टि को 'कुछ नहीं' अथवा शून्य से उत्पन्न किया। यह मत शुद्ध 'एकेश्वरवाद', कहा जा सकता है। इसी प्रकार द्वितीय वर्ग उन लोगों का है, जो 'शुदूदिया' कहलाते हैं और जिनका विश्वास है कि ईश्वर इस जगत् से परे है, किन्तु उसकी सभी बातें जगत् में किसी दर्पण के भीतर प्रतिबिम्ब की भाँति दिखाई देती हैं। इस वर्ग के सिद्धान्त को 'सर्वात्मवाद' कहा जाता है। तृतीय वर्ग उन लोगों का है, जो 'वुजूदिया' कहे जाते हैं और जिनका विश्वास है कि ईश्वर के अतिरिक्त वास्तव में अन्य कोई वस्तु नहीं है। वही एकमात्र सत्ता है और विश्व में अन्य जितनी भी वस्तुएँ हैं, उन्हें हम--'हम अस्त' (वही सब कुछ है) के अनुसार उसी का रूप सर्वत्र देखते हैं। इस वर्ग के सिद्धान्त को 'एकात्मवादी' अथवा 'एकत्ववादी' कहते हैं। प्रथम सिद्धान्त इस्लाम धर्म की मूल विचारधारा के अनुकूल है और शेष अन्तिम दो ठेठ सूफीमत के साथ सम्बद्ध हैं।

ईश्वर और जगत्—ईश्वर जगल्लीन अर्थात् जगत् के भीतर ओतप्रोत है

अथवा वह जगद्बहिर्भूत अर्थात् दृश्यमान जगत् से नितान्त परे है। इस सम्बन्ध में सूफियों के पाँच सिद्धान्त या मत दिखाई देते हैं। (१) प्रथम मत के अनुयायियों में से अधिकांश इस बात में आस्था रखते हैं कि ईश्वर जगत् से परे रहकर भी उसमें लीन हैं। 'गुलशने राज' के सूफी कवि के अनुसार ईश्वर जगत् में उसके अन्तरात्मा के रूप में परिव्याप्त है, किन्तु उसके कारण वह किसी प्रकार सदोष या सीमाबद्ध नहीं कहा जा सकता।

(२) दूसरे मत के सूफियों में से इब्न अरबी ने सर्वात्मवाद वा विश्वात्मवाद का प्रचार किया और उसके अनुसार ईश्वर एवं जगत् समपरिमाण रूप है।

(३) जिली का कथन है कि जगत् की कोई भिन्न सत्ता नहीं, स्वयं ईश्वर ही जगत् रूप है—दोनों दो विभिन्न पदार्थ नहीं हैं।

(४) किन्तु हुज्विरी के मतानुसार ईश्वर एवं जगत् पृथक्-पृथक वस्तुएँ हैं और ईश्वर जगत् के बाहर है। यह मत 'एकदेववाद' का समर्थन करता है।

(५) अन्त में पाँचवाँ मत उक्त चारों से भिन्न उन रूमी प्रमुख सूफियों का मत है, जो ईश्वर को न जगत् में लीन समझते हैं और न उसे इससे बाहर ही मानते हैं।

ईश्वर निर्गुण व सगुण—सूफीमत निर्गुण के अधिक निकट है अथवा सगुण के ? इस सम्बन्ध में भी सूफियों में मतैक्य नहीं है। इब्न अरबी, हल्लाज एवं जामी प्रभृति सूफियों का कहना है कि ईश्वर केवल शुद्ध-स्वरूप अथवा सत्तामात्र निर्गुण एवं निर्विशेष है यह उसका अव्यक्त रूप है, जो अपूर्ण और अवर्णनीय है तथा जिसे निरक्षेप भी कह सकते हैं किन्तु हुज्विरी कालावधि जैसे सूफियों के अनुसार वह तत्त्व सर्वप्रथम दशा से ही सगुण रूप में विद्यमान है और उसके गुणों की संख्या अनन्त है। इन दोनों में से प्रथम मत वेदान्त के शांकराद्वैतवाद की भाँति जान पड़ता है और दूसरा विशिष्टाद्वैत-सा प्रतीत होता है।

सृष्टि तत्त्व अर्थात् सृष्टि का उद्देश्य—सूफियों ने जगत् की सृष्टि के अन्तिम उद्देश्य, उसकी प्रक्रिया, उसके स्वरूप, प्रभृति सभी आवश्यक बातों पर अपने विचार प्रकट किये हैं। शामी परंपरानुसार कहा जाता है कि एक बार हज़रत दाऊद ने ईश्वर से प्रश्न किया था—"हे प्रभो ! आपने मानव जाति की सृष्टि क्यों की ?" उत्तर मिला—"मैंने अपने गूढ़ रहस्य को व्यक्त करने की इच्छा से ऐसा किया।" हल्लाज ने कहा है कि ईश्वर अपने स्वरूप का निरीक्षण कर अपने आप रीझ गया और उसके उस आत्म-प्रेम का ही सृष्टि रूप में आविर्भाव हुआ है। मानव रूपी दर्पण में अपनी प्रतिच्छवि देखकर उसे आत्म-ज्ञान के साथ-साथ तज्जनित आनन्दलाभ की इच्छा भी तृप्त हो गयी। ईश्वर की यह आनन्दाभिलाषा, संभवतः उस लीलाजनित आनन्द के द्वारा पूर्ण हुई, जिसकी कल्पना का आभास हमें वल्लभाचार्य के शुद्धाद्वैतवाद में मिलता है। विश्व की सृष्टि इस प्रकार ईश्वर के स्वतः स्फूर्त एवं अपरिमेय आनन्द का एक मूर्त विकास मात्र है।

सृष्टि की प्रक्रिया—अव्यक्त ईश्वर ही स्वयं व्यक्त रूप में परिणत हो गया, उस आधार पर सृष्टि-प्रक्रिया को परिणामवाद कहना न्यायसंगत ही है। विश्व-सृष्टि के विषय में सभी सूफी प्रायः एक मत के ही मानने वाले प्रतीत होते हैं। अधिकांश सूफियों के अनुसार परमेश्वर ने सर्वप्रथम अपने नाम के आलोक से 'नूरुलमुहम्मदिया' अर्थात् 'मुहम्मदीय आलोक' की सृष्टि की और वही आभूत बन गया। फिर उसी 'नूर' सम्बन्धी उपादान कारण से पृथ्वी, जल, वायु एवम् अग्नि इन चार तत्त्वों की सृष्टि हुई, फिर आकाश और तारे हुए तथा उसके अनन्तर सप्त भुवन, धातु, उद्भिज्जपदार्थ, जीव-जन्तु एवं मानव की रचना हुई, जिनके द्वारा ब्रह्माण्ड बना तथा अनेक ब्रह्माण्डों का विश्व प्रादुर्भूत हुआ और इस प्रकार सारी सृष्टि की रचना हुई।

मानव-शरीर—सूफीमतावलम्बियों के अनुसार 'मानव' सृष्टि का चर-मोत्कर्ष है और वही ईश्वर के स्वरूप की पूर्ण अभिव्यक्ति है। अतएव जो कुछ मानव के शरीर में निर्मित है वह ईश्वर की आंशिक 'प्रतिच्छवि जगत् से भी अधिक है और वह उसका पूर्ण प्रतिरूप कहा जा सकता है।

मानव तत्त्व अर्थात् पूर्ण मानव—अधिकांशतः सूफियों के मतानुसार मानव की पूर्णता उसके जीवन का परम लक्ष्य होना चाहिए । इब्न अरबी ने पूर्ण मानव को ही ईश्वर की एक मात्र अभिव्यक्ति कहा है । जगत् की अन्य वस्तुएँ केवल उसके गुणों को ही व्यक्त करने का साधन हैं । सृष्टि का चरमोत्कर्ष जिस प्रकार मानव कहा जाता है, उसी प्रकार पूर्ण मानव उसका भी चरमोत्कर्ष कहा जा सकता है । सूफियों का पूर्ण मानव अथवा सिद्ध पुरुष अद्वैतवादियों के जीवन्मुक्त से नितान्त भिन्न है । सूफी सन्तों का पूर्ण मानव सृष्टि का आदि उपादान कारण है । पूर्ण मानवत्व की उपलब्धि प्रेम-मूलक है, जहाँ पर जीवन्मुक्त की स्थिति ज्ञानमूलक है और वह जगत का धर्म-गुरु न होकर ज्ञानगुरु हुआ करता है ।

नबी और औलिया—सूफियों ने अपने साधु और धर्मप्रवर्तकों को भी पूर्ण मानव के रूप में माना है और उन्हें 'वली' या 'पीर' की उपाधि से विभूषित किया है । मूल इस्लाम धर्म के प्रेमी सूफी साधारणतः धर्मप्रवर्तकों (नवियों, पैगम्बरों) और साधुओं (पीर, औलिया) में कुछ विभेद बतलाते हैं । उनका कहना है कि द्वादश प्रसिद्ध धर्मप्रवर्तकों (अर्थात् नूह, इब्राहिम, इस्माइल, आइजाक, जेकव, जोब, ईसा, मूसा, सुलेमान, दाऊद, अर्न तथा मुहम्मद) में मुहम्मद ही सबसे अन्तिम और सर्वश्रेष्ठ हैं । पूर्ण मानव को कतिपय सूफियों ने अवतार रूप में भी स्वीकार करने की भावना प्रदर्शित की है, किन्तु इसमें एक मत नहीं है ।

फना और वफा—सूफियों ने मानवजीवन के उद्देश्य को दो प्रकार से समझा है, जिसमें एक प्रभाववोधक और दूसरा भाववोधक है । अभावसत्ता का नाम उन्होंने 'फना' अर्थात् विलय या ध्वंस दिया है और भाववोधक को 'वफा' के नाम से सम्बोधन कर अभिहित किया है किन्तु इसमें सभी सूफी एकमत नहीं हैं । कालावाधी और हुज्विरी जैसे सनातनपंथ-प्रेमी सूफी फना और वफा से तात्पर्य केवल जीव की जगत के प्रति बनी हुई आसक्ति के लोप हो जाने और ईश्वर के प्रति पूर्ण अनुराग तथा उसकी अधीनता में अवस्थित हो जाने से मानते हैं ।

इस प्रकार सूफी मत के सिद्धान्त मुसलमानों के एकेश्वरवाद और वेदान्तियों के निर्गुणवाद से प्रभावित हैं।

जायसी पर सूफी मत का प्रभाव—यह निर्विवाद सत्य है कि मलिक मुहम्मद जायसी ने अपने 'पद्मावत' नामक ग्रन्थ में सूफी सिद्धान्तों का पूर्णतः समावेश किया है। डा० रामकुमार वर्मा के शब्दों में 'समस्त कथा सूफी सिद्धान्त बादल में पानी की बूंद की भाँति छिपे हुए हैं।' सूफियों में साधक की चार अवस्थाएँ मानी जाती हैं--(१) शरीयत अर्थात् धर्मग्रन्थों के विधि-निषेध का विधिवत् पालन। यह हमारे यहाँ का कर्मकाण्ड है। (२) तरीकत—अर्थात् बाहरी क्रियाकलाप से परे होकर केवल हृदय की शुद्धता द्वारा भगवान का ध्यान करें। इसे उपासनाकाण्ड कह सकते हैं। (३) हकीकत—भक्ति और उपासना के प्रभाव से सत्य का सम्यक् बोध, जिससे साधक तत्त्व-दृष्टि-सम्पन्न और त्रिकालज्ञ हो जाता है। इसे ज्ञानकाण्ड कहा जा सकता है। (४) मारफत अर्थात् सिद्धावस्था—जिसमें कठिन व्रत और मौनावस्था से साधक की आत्मा परमात्मा में लीन हो जाती है।

जायसी ने 'अखरावट' में इन चारों अवस्थाओं का उल्लेख किया है—

कही सरीअत पित्तो पीरू। उधरित असरफ औ जहँगीरी॥
राह हकीकत परै न चूकी। पैठि मारफत मार बुड़ की॥

जायसी साधक के लिए कर्मकाण्ड की आवश्यकता अनुभव करते हैं—

साँची राह सरीअत, जेहि विसवास न होइ।
पाँव रखै तेहि सीढ़ी, निरभय पहुँचै सोइ॥

साधक के लिये यह भी कहा गया है कि वह प्रकट में तो सब लोकव्यवहार करे पर गुप्त रूप से अपना कार्य करता रहे—

परगट लोक चार कहु वाता। गुपुत भाउ मन तासों राता॥

इसे 'खिलवत दर अंजुमन' कहते हैं।

नफ्स के साथ जिहाद करते हुए—इन्द्रियदमन करते हुए उस परमात्मा तक पहुँचने का जो मार्ग बताया गया है वह 'तरीका' कहलाता है। इस

मार्ग के राही को भूख-प्यास सहना, एकान्तवास करना और मौन रहना आवश्यक है। इस मार्ग में जो पड़ाव हैं वे 'मुकामात' कहलाते हैं। इनमें पहला मुकाम 'तौबा' है। जायसी ने चार बसेरे की बात कई बार लिखी है। वे या तो ये 'मुकामात' हैं या ऊपर कही हुई अवस्थाएँ। सिंघलगढ़ के वर्णन में जायसी ने कहा है—

नवौ खण्ड नव पौरी, औ तहँ बज्र किवार।
चार बसरे सौं चढ़े, सत सौं उतरै पार॥

ये मुकामात या अवस्थाए उन आन्तरिक अवस्थाओं के अधीन हैं, जो परमात्मा की कृपा से कल्ब या हृदय के बीच उपस्थित होती हैं और 'अहवाल' कहलाती हैं। इस 'अहवाल' को ही 'हाल' कहते हैं जिसमें साधक अपने को भूलकर ब्रह्मानन्द में लीन हो जाता है। यह समाधि की अवस्था है। जायसी ने नीचे की पंक्तियों में इसी अवस्था की ओर संकेत किया है—

कया जो परम तन मन लावा। घूम माति, सुनि और न भावा॥
जस मद पिए धूम कोइ, नाद सुने पै घूम।
तेहिते वरजे नीक है, चढ़े रहसि के दूम॥

इस 'हाल' वा प्रलयावस्था के दो पक्ष हैं—त्यागपक्ष और प्राप्तिपक्ष। त्यागपक्ष के अन्तर्गत हैं— (१) फना (अपनी अलग सत्ता की प्रतीति से परे हो जाना), (२) फकद (अहंभाव का नाश) और (३) सुक्र (प्रेममद)। प्राप्पिक्ष के अन्तर्गत हैं—(१) बका (परमात्मा में स्थिति), (२) वज्द (परमात्मा की प्राप्ति) और (३) शखे (पूर्ण शान्ति)।

सूफियों की दृष्टि में परमात्मा की सत्ता का सार प्रेम है। सृष्टि से पूर्व परमात्मा का प्रेम अपने तक ही सीमित था लेकिन पीछे उस अद्वैत प्रेम को बाह्यरूप में देखने की इच्छा से उसने अपने ही जैसे रूप-गुण-सम्पन्न प्रतिबिम्ब को बनाकर उसे 'आदम' नाम दिया। इसी को दृष्टि में रखकर लिखा है—

आपुहि आपुहि चाह देखावा। आदमरूप भेस धरि आवा॥

सूफियों की यह भी धारणा है कि नित्य परमार्थिक सत्ता एक ही है।

यह नामरूपात्मक जगत् उसी एक की बाह्य अभिव्यक्ति है। परमात्मा का बोध इसी नामरूपात्मक अभिव्यक्ति से हो सकता है। जायसी कहते हैं—

दीन्ह रतन बिधि चारि, नैन, वैन, सखना, मुख।
पुनि जब मेटिहि मारि, मुहम्मद तब पछिताव मैं॥
(अखरावट)

यह मत वेदान्त के अद्वैतवाद से मिलता-जुलता है। जायसी ने इस धारणा को मानकर ही दर्पण में पद्मिनी के रूप की झलक देखकर अलाउद्दीन से कहलाया है—

देखि एक कौतुक हौं रहा। रहा अन्तर पटपै नहिं अहा।
सरवर देख एक मैं सोई। रहा पानि पै पान न होई॥
सरग आइ धरती महँ छावा। रहा धरति पै धरत न आवा॥

अखरावट में भो इसी से मिलती हुई बात कही है—

दरपन बालक हाथ, मुख देखै दूसर गन।
तस भा दुइ एक हाथ, मुख मुहम्मद एकै जानिए॥

सूफियों में 'अनलहक' वाक्य यजुर्वेद के वृहदारण्यक उपनिषद् के 'अहं ब्रह्मास्मि' का प्रतिरूप है। अहंकार के नाश पर सूफी बहुत जोर देते हैं। 'सर्वत्र मैं हूँ' ? यह भावना अहंकार के नाश होने पर होती है—

'हौं हौं' कहत सबें मति खोई। जौ तू नाहि आहि सब कोई।
आपुहि गुरु सो आपुहि चेला। आपुहि सब औ आपु अकेला॥

अपनी पद्मावत के उपसंहार में जायसी ने सूफीमत का ही रूपक दिया है। उसका सूफी सिद्धान्तों के अनुसार सारांश यह है कि यह मन (रत्नसेन) दुनियाँ धंधा (नागमती) में पड़ा है। उसे मुक्ति के लिए बुद्धि (पद्मावती) की आवश्यकता है। परमात्मा की कृपा से उसे ऐसा गुरु (सूआ) मिलता है जो मन और बुद्धि को मिला देता है। बुद्धि को प्राप्त कर मन फिर 'दुनिया धंधा' की ओर चलता है, जिससे शैतान (राघव चेतन) उसे माया (अलाउद्दीन) के पंजे में फँसा देता है। बुद्धि (पद्मावती) को माया (अलाउद्दीन) के पंजे में फँसाने की कोशिश की जाती है पर सफलता नहीं मिलती। अन्त में 'मन',

'बुद्धि' और 'दुनियाँ धंधा' पर माया का आक्रमण होता है। पर 'माया' को मिलता कुछ नहीं, केवल मुट्ठी भर राख मिलती है। इसलिए 'माया' की चिन्ता न कर, 'मन' को बुद्धि' की प्राप्ति में लगाना चाहिए। बुद्धि के विना 'दुनियाँ धंधा' व्यर्थ है! 'बुद्धि' के लिए कठिन तपस्या चाहिए। हठयोग और प्रेम से ही पक्की बुद्धि प्राप्त होती है।

तन चितउर मन राजा कीन्हा। हिय सिंघल बुधि मदमिनि चीन्हा ।।
गुरु सूआ जेहि पंथ दिखावा। बिन गुरु जगत को निरगुन पावा ।।
राघवदूत सोई सैतानू। माया अलादीन सुलतानू।
नागमती यह दुनियाँ धंधा। बाँचा सोहन एहिचित बंधा ।।

———

प्रश्न ५—ज्ञानाश्रयी शाखा के सन्त कवियों और प्रेम मार्गी शाखा के सूफी कवियों में जो प्रवृत्ति-भेद आपको लक्षित हुआ हो उसका निरूपण कीजिए। हिन्दू-धर्म के विविध सिद्धान्तों का इनमें कहाँ तक प्रभाव पड़ा है।

उत्तर—ज्ञानाश्रयी शाखा और प्रेममार्गी शाखा दोनों ही निर्गुण-भक्ति-परम्परा के अन्तर्गत आती हैं। हिन्दू और मुसलमानों की एकता के लिए एक सामान्य भक्ति-मार्ग की स्थापना के लिए वज्रयानी सिद्धों और नाथपंथी योगियों के चरण चिन्हों पर चल कर हिन्दुओं के अद्वैतवाद और सूफियों के प्रेमतत्त्व को लेकर जिस निर्गुणोपासना की स्थापना की गई थी, वह 'निर्गुण-पंथ' कहलाया। इसके प्रमुख प्रवर्तक सन्त कबीरदास थे। आगे चल कर इसी निर्गुण-पंथ की दो धाराएँ हुईं, जो ज्ञानाश्रयी और प्रेममार्गी शाखा के नाम से प्रतिष्ठित हुईं।

ज्ञानाश्रयी शाखा—का उदभव हिन्दू-मुस्लिम एकता तथा जाति-पाँति और छूआ-छूत के भेद-भाव को मिटाने के उद्देश्य से दोनों धर्मों से लिए हुए विभिन्न सिद्धान्तों के सम्मिश्रण से हुआ। "जाति-पाँति पूँछे नहिं कोई, हरि को भजे सो हरि का होई" का स्वर सन्तों की वाणी से मुखरित हो उठा। इन सन्तों

को समाजसुधारक श्रौर धर्मसुधारक की उपाधि से विभूषित किया गया। ज्ञानाश्रयी शाखा में वैष्णवों की श्रहिंसा श्रौर पैगम्बरी कट्टर खुदावाद को भी स्थान दिया गया है। इस शाखा के कवियों ने हिन्दू श्रौर मुसलमान दोनों की बाह्य-विधियों, बहुदेवोपासना, तीर्थ, व्रत, रोजा, नमाज श्रादि का खण्डन किया एवं श्रन्तःसाधना पर बल दिया। शाखा में होने वाले कवि प्रायः श्रशिक्षित श्रौर निम्न जाति के थे। इसीलिए "जाति-पाँति पूछे नहिं कोई" की श्रावाज बुलन्द रही। श्राचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में 'पहली शाखा (ज्ञानाश्रयी शाखा) भारतीय ब्रह्मवाद श्रौर योग-साधना को लेकर तथा उसमें सूफियों के प्रेमतत्त्व को मिलाकर उपासना-क्षेत्र में श्रग्रसर हुई श्रौर सगुण के खण्डन में उसी जोश के साथ तत्पर रही जिस जोश के साथ पैगम्बरी मत बहुदेवोपासना श्रौर मूर्ति-पूजा श्रादि के खण्डन में रहते हैं।"

इससे स्पष्ट विदित होता है कि ज्ञानाश्रयी शाखा में खण्डन-मण्डन की प्रवृत्ति श्रधिक रही है। इस शाखा के सन्त श्रशिक्षित समाज को श्रपनी श्रोर श्रधिक श्राकर्षित कर सके हैं, उतना शिक्षित समाज को नहीं कर सके।

साहित्यिक दृष्टि से इस शाखा के कवियों की रचनाएँ विशेष महत्त्व नहीं रखतीं। सभी कवियों ने फुटकर दोहों या पदों के रूप में रचना की, जिनकी शैली श्रौर भाषा श्रव्यस्थित श्रौर ऊटपटाँग है। यही कारण है कि इस शाखा का प्रभाव शिक्षित वर्ग पर न के बराबर पड़ा, किन्तु श्रशिक्षित जन-समुदाय पर इस शाखा के सन्तों का बड़ा भारी उपकार है, इसी उपकार को ध्यान में रखकर पाश्चात्य समालोचकों ने इन सन्तों को धर्मसुधारक की उपाधि दी थी।

विशेषताएँ—(१) प्रायः सभी सन्त, कवि की श्रपेक्षा समाज सुधारक श्रधिक थे। उनका उद्देश्य कविता करना नहीं, श्रपितु समाज में फैली हुई कुरीतियों को दूर करना था। (२) प्रायः सभी सन्त श्रशिक्षित श्रौर निम्न जाति के थे। श्रतः इधर-उधर घूमकर उपदेश दिया करते थे। जहाँ जाते वहीं की भाषा से प्रभावित श्रपनी बोली में श्रपने सिद्धान्तों का प्रचार किया करते थे। श्रतः इनकी भाषा को सधुक्कड़ी भाषा कहा जा सकता है। (३) सबने गुरु के महत्त्व पर जोर दिया एवं कनक श्रौर कामिनी का विरोध किया (४) प्रायः

सभी सन्त रहस्यवादी थे और उन्होंने अपनी भावनाओं को रूपक और उलट-वासियों के द्वारा प्रकट किया।

प्रेममार्गी शाखा—यह शाखा भारत में सूफी सम्प्रदाय की देन है। सूफी सम्प्रदाय मुस्लिम धर्म का अंग है, परन्तु इसमें मुस्लिम धर्म से थोड़ा अन्तर है। सूफी सम्प्रदाय वाले सर्वेश्वरवाद को मानते तथा 'अनलहक' पर विश्वास रखते हैं जो मुसलमानों के धर्म के विरुद्ध है। इस शाखा का भी मुख्य उद्देश्य हिन्दू-मुस्लिम एकता ही था। यह कार्य ज्ञानमार्गी कवियों की अपेक्षा इन प्रेममार्गी सूफियों द्वारा अधिक सफलतापूर्वक हुआ। कारण ज्ञानमार्गियों ने जिस प्रधान अंतःसाधना को अपनाया था, वह सर्वसाधारण के लिए ग्राह्य नहीं थी। इन प्रेममार्गी सूफी कवियों ने ईश्वर-प्राप्ति के लिए प्रेम को आवश्यक बताया। 'प्रेम की पीर' इनके काव्य की आत्मा है। इनके काव्य में हिन्दू और मुसलमान दोनों धर्मों के सिद्धान्तों का समावेश है। साथ ही उन्होंने कबीर आदि की भाँति खण्डन पर जोर न देकर जनता के हृदय को स्पर्श करने का यत्न किया। हिन्दू घरों में प्रचलित लौकिक प्रेम-कथाओं को अपनाकर इन कवियों ने अलौकिक प्रेम की सुन्दर अभिव्यक्ति की है। उन्होंने स्त्री को परमात्मा और पुरुष को आत्मा का रूप दिया है तथा आत्मा और परमात्मा के मिलन में माया के स्थान पर शैतान को बाधक माना है। इस शाखा के प्रमुख प्रवर्त्तक म० मु० जायसी हैं।

इस शाखा के सभी कवि प्रबन्धकारक हैं। अतः इनका विशेष महत्त्व है। एक ओर इन्होंने हिन्दी-साहित्य में प्रबन्ध-काव्यों की शृङ्खला प्रचलित की और दूसरी ओर कथा-साहित्य को जन्म दिया। इनमें प्रेम-निर्वाह की अद्भुत क्षमता थी। इनके महाकाव्यों की रचनाशैली भारतीय महाकाव्यों जैसी नहीं, अपितु, फारसी मसनवियों के ढङ्ग पर हुई है और सब में दोहा चौपाई पद्धति अपनाई है। इस शाखा के सभी कवियों ने अवधी भाषा का प्रयोग किया है। सबकी रचनाओं में भाषा का सुन्दर और व्यवस्थित रूप मिलता है।

सन्त कवियों और सूफी कवियों में प्रवृत्ति-भेद

ज्ञानाश्रयी शाखा के सन्त कवियों और प्रेममार्गी शाखा के सूफी कवियों में निम्नलिखित बातों में विरोध है—

१—सन्त कवियों ने अपने काव्य में माया का स्थान माना है और सूफी कवियों के प्रेम गाथा-काव्य में माया का कोई स्थान नहीं है ।

२—सन्तों ने ईश्वर की प्रियतम के रूप में कल्पना की है और सूफियों ने प्रियतमा के रूप में ।

३—ज्ञानाश्रयी शाखा के सभी सन्त भारतीय वेदान्त से प्रभावित थे तथा प्रेममार्गी शाखा के सूफियों की प्रेरणा का स्रोत फारस है ।

४—सन्त काव्य में भिन्न प्रतीत होती हुई ईश्वर की परोक्ष सत्ता का आभास है तथा सूफी काव्य में भिन्न प्रतीत होती हुई मानव-हृदय की एकता का आभास है ।

५—सन्त कवियों का खण्डनात्मक दृष्टिकोण रहा है और सूफी खण्डन-मण्डन से सर्वथा दूर रहे हैं ।

६—सन्तों में अहं का प्राधान्य है और सूफियों में सरलता तथा नम्रता की भावना का प्रधान्य है ।

७—ज्ञानाश्रयी शाखा के सन्त कवियों का काव्य मुक्तक है तथा प्रबन्ध का अभाव है और प्रेममार्गी शाखा के सूफी कवियों का काव्य, प्रबन्ध-काव्य है, उनमें मुक्तक का अभाव है ।

८—सन्त कवियों की भाषा खिचड़ी है । उसमें व्रज, अवधी, खड़ी बोली, पंजाबी, राजस्थानी आदि का अद्भुत सम्मिश्रण है, किन्तु सूफी कवियों की भाषा सुव्यवस्थित अवधी है ।

९—सन्तों के हृदय में ब्रह्म का दर्शन और प्रकृति उपेक्षित है तथा सूफियों ने व्यक्ति-प्रकृति में उसी ब्रह्म के स्वरूप-रूप का दर्शन किया है ।

१०—सन्तों ने ज्ञान ईश्वर-प्राप्ति का प्रधान साधन माना है और प्रेम सहायक मात्र, किन्तु सूफियों ने प्रेम प्रधान—ज्ञान सहायक मात्र माना है ।

ज्ञानाश्रयी शाखा के सन्त कवियों और प्रेममार्गी शाखा के सूफी कवियों में उपर्युक्त प्रवृत्ति-भेद होते हुए भी निम्नलिखित बातों में साम्य भी है—

(१) निर्गुण ईश्वरोपासना, (२) गुरु की महत्ता, (३) प्रेम माधुरी,

(४) हठयोग की भावना, (५) विरह की तीव्रता, (६) माया और शैतान का एक ही रूप में चित्रित करना आदि ।

हिन्दू-धर्म के विविध सिद्धान्तों का प्रभाव

निर्गुण-भक्ति-परम्परा के प्रथम प्रवर्त्तक सन्त कबीरदास थे, जिन्होंने स्वामी रामानन्द के शिष्य होकर भारतीय अद्वैतवाद की कुछ स्थूल बातें ग्रहण की और वैष्णवों से उन्होंने अहिंसावाद एवं प्रपत्तिवाद लिए। संसार की असारता, ब्रह्म, माया, जीव, सृष्टि, प्रलय आदि की जो चर्चा सन्त-कवियों ने की है, उस पर हिन्दू-ब्रह्मज्ञानियों का प्रभाव है। ज्ञानाश्रयी शाखा भारतीय ब्रह्मज्ञान और योगसाधना को लेकर अग्रसर हुई है।

प्रेममार्गी शाखा के सूफी कवियों ने जिन प्रेम-गाथाओं को अपनाया है वे सब हिन्दुओं के घरों में प्राचीनकाल से चली आती हुई कहानियाँ हैं, जिनमें आवश्यकतानुसार उन्होंने कुछ हेर-फेर अवश्य किया है। कहानियों का मार्मिक आधार हिन्दू है। मनुष्य के साथ पशु-पक्षी और पेड़-पौधों को भी सहानुभूति के सूत्रों में बाँध कर दिखाना एक अखण्ड जीवन समष्टि का आभास देना हिन्दू प्रेम कहानियों की विशेषता है।

कबीर आदि सन्त प्रारम्भ से ही हिन्दू-भाव की उपासना की ओर आकर्षित हुए हैं। आचार्य शुक्ल के शब्दों में "जो ब्रह्म हिन्दूओं की विचार-पद्धति में ज्ञानमार्ग का एक निरूपण था उसी को कबीर ने सूफियों के ढर्रे पर उपासना का ही विषय नहीं, प्रेम का भी विषय बनाया और इसकी प्राप्ति के लिए हठयोगियों की साधना का समर्थन किया। इस प्रकार उन्होंने भारतीय ब्रह्मवाद के साथ सूफियों के भावात्मक रहस्यवाद, हठयोगियों के साधनात्मक रहस्यवाद और वैष्णवों के अहिंसावाद तथा प्रपत्तिवाद का मेल करके अपना पंथ खड़ा किया।"

सन्त कवियों और सूफी कवियों में जहाँ तक ज्ञान मार्ग की बातें हैं, वे सब हिन्दू-शास्त्रों की हैं, जिनका संचय स्वामी रामानन्द के उपदेशों से किया गया है। माया, जीव, ब्रह्म, तत्त्वमसि अष्टमैथुन, त्रिकुटी, छः रिपु इत्यादि

शब्दों का परिचय हिन्दू-शास्त्रों की देन है। उपनिषद् की ब्रह्म विद्या के सम्बन्ध में कबीर का यह कथन इसका प्रबल प्रमाण है।

तत्त्व मसी इनके उपदेसा। ई उपनीषद कहैं संदेसा॥
जागवलिक और जनक संवादा। दत्तात्रेय वहै रस स्वादा॥

इतना ही नहीं, वेदान्तियों के कनक-कुण्डल-न्याय आदि का व्यवहार भी इनके वचनों में मिलता है—

गहना एक कनक तें गहन, इनमें भाव न दूजा।
कहन-सुनन को दुइ करि थापिन, इक निमाज इक पूजा॥

इसी प्रकार उन्होंने हठयोगियों के साधनात्मक रहस्यवाद के कुछ सांकेतिक शब्दों—चन्द, सूर, नाद, बिन्दु, अमृत, औंधा कुआँ आदि को लेकर अद्भुत रूपक बाँधे हैं, जिनका सामान्य जनता पर बहुत प्रभाव पड़ा। वैष्णव सम्प्रदाय से उन्होंने अहिंसा का जो तत्त्व ग्रहण किया, उससे सूफी फकीर भी बहुत प्रभावित हुए। कबीर ने हिंसा के लिए जो मुसलमानों को फटकारा है उसके मूल में वैष्णवों की अहिंसात्मक प्रवृत्ति का ही प्रभाव है—

दिन भर रोजा रहत हैं, राति हनत हैं गाय।
यह तो खून वह बन्दगी, कैसे खुसी खुदाय॥

× × ×

अपनी देख करत नहीं अहमक, कहत हमारे बड़न किया।
उसका खून तुम्हारी गरदन, जिन तुमको उपदेस दिया॥

× × ×

बकरी पाती खाति है, ताकी काढ़ी खाल।
जो नर बकरी खात हैं, तिनका कौन हवाल॥

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सन्त कवियों और सूफी कवियों ने ज्ञान-मार्ग की बहुत सी बातें हिन्दू साधु-सन्यासियों से ग्रहण कीं। जिस प्रकार कुछ वैष्णवों में 'माधुर्य' भाव से उपासना प्रचलित हुई थी उसी प्रकार सूफियों में भी ब्रह्म को सर्वव्यापी प्रियतम या माशूक मानकर हृदय के उद्गार प्रदर्शित करने की प्रथा चल पड़ी। निर्गुण-पंथ में जो थोड़ा-बहुत ज्ञानपक्ष है, वह

वेदान्त से लिया हुआ है। 'सुरति' और 'निरति' शब्द बौद्धों के हैं। नाम की महत्ता—जप, कीर्तन, भजन आदि के रूप में भगवान का गुण-कीर्तन संतों और सूफियों में समान रूप से पाया जाता है, जो हिन्दू धर्म के विविध सिद्धान्तों से प्रभावित है।

———

प्रश्न ६—सूफी काव्य की विशेषतायें बतलाइए।

उत्तर—वीरगाथा काल के कुछ काल अनन्तर वीरगाथाएँ उतनी लोकप्रिय नहीं रह गई थीं। सारे भारतवर्ष में नवागत मुसलमानों का साम्राज्य प्रतिष्ठित हो चला था। उनके प्रभाव से चारण और भाटों का प्रभाव देश के अधिकांश हिस्सों से उठ गया था। राजपूताने के कई राजपूत वंश स्वतंत्र थे और उनकी वीरता ज्यों की ज्यों बनी हुई थी। वीरगाथाओं की परम्परा इन स्वतन्त्र राज्यों में बहुत दिनों तक जीवित रही परन्तु उनका सार्वदेशिक प्रभाव कम हो गया। मुसलमान लोग धीरे-धीरे देश में परिचित तथा आत्मीय हो चले थे। इस देश के रहने वालों में भी बहुतों ने इस धर्म को स्वीकार कर लिया था। इनमें कितने ही प्रभावशाली कवि हुए जिन्होंने प्राचीन भारतीय कहानियों को काव्य का रूप दिया। इस प्रकार लगभग १४वीं और १५वीं शताब्दियों में हिन्दी में प्रेम काव्य का प्रारम्भ हुआ। एक ओर कट्टर और नृशंस मुसलमान हिन्दुओं की हत्या करने को सदैव तत्पर रहते थे और दूसरी ओर साधारण जनता में परस्पर प्रेम भाव दृढ़ हो रहा था। कबीर ने अपनी प्रेम-भक्तिमयी वाणी से हिन्दू और मुसलमान दोनों जातियों के पारस्परिक वैमनस्य को दूर करने का प्रयत्न किया था। इसलिये सामान्य जनता तो कबीर के विचारों से अत्यधिक प्रभावित थी। एक तरफ बल्लभाचार्य और चैतन्यमहाप्रभु तथा रामानन्द के प्रभाव से परम्परागत पशु-हिंसा, जन्त्र-तन्त्र तथा छुआछूत की प्रथा बन्द हो गई थी तथा लोग भगवत प्रेम की प्रतिष्ठा करने लगे थे। यही नहीं दूसरी ओर सूफी कवि भी सच्चे प्रेम की शिक्षा देने लगे। इस प्रकार हिन्दू

श्रौर मुस्लिम जनता जो कभी वैर विरोध का शिकार बनी हुई थी साधु श्रौर सन्तों की प्रेममयी वाणी से ईर्ष्या, घृणा तथा द्वेष श्रादि की भावना को विसारने लग गई थी। संत कवियों में निर्गुणवाद की ज्ञानाश्रयी श्रौर प्रेमाश्रयी शाखा में यही अन्तर रहा कि जहाँ संत कवियों की वाणी शुष्क, नीरस श्रौर अटपटी थी वहाँ सूफी कवियों की वाणी ने मधुर श्रौर सरस भावापन्नता से ईष्या, द्वेष की अवशिष्ट प्रकृति को दूर किया। इन कवियों के द्वारा प्रेम की पीर की व्यञ्जना की मूल भावनाश्रों को उन्होंने अपने काव्य का श्राधार बनाया जो मानव मात्र की सम्पत्ति है। ये प्रेमकाव्य दो प्रकार के लिखे गये, एक तो सूफी प्रेमकाव्य श्रौर दूसरे हिन्दू प्रेमकाव्य। यदि सूफी काव्य की विवेचना की जाय तो ज्ञात होगा कि सूफी विचारावली का श्रारम्भ उन साधुश्रों की विचारावली से है जो साधु श्रात्मा श्रौर परमात्मा की एकरूपता स्वीकार करते हुए प्रेम द्वारा उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करते थे तथा सफेद ऊन के बने हुए कपड़े पहनते थे। सूफी काव्य इन्हीं सन्तों की देन है।

श्राचार्य रामचन्द्र शुक्ल सूफी कवियों का स्थान निर्धारित करते हुए कहते हैं कि—"मुसलमान होकर हिन्दुश्रों की कहानियाँ हिन्दुश्रों की बोली में पूर्ण सहृदयता से कहकर उनके जीवन की मर्मस्पर्शिनी श्रवस्थाश्रों के साथ अपने उदार हृदय का पूर्ण सामञ्जस्य दिखा दिया। कबीर ने केवल भिन्न प्रतीत हुई परोक्ष सत्ता की एकता का श्राभास दिया था, अतः प्रत्यक्ष जीवन की एकता का दृश्य सामने रखने की श्रावश्यकता बनी थी वह जायसी द्वारा पूरी हुई।" श्राचार्य रामचंद्र शुक्ल इस सम्बन्ध में अक्षरशः सत्य हैं।

सूफी कवियों ने श्रात्मा की कल्पना पुरुष तथा परमात्मा की कल्पना नारी के रूप में की है। इनके काव्यों में राजकुमारी तथा राजकुमार का वर्णन नहीं बल्कि श्रात्मा श्रौर परमात्मा का रूप है। सूफी मत के अनुसार परमेश्वर जात तथा मुहम्मद सिफत हैं जिससे अनन्त शक्ति का निर्माण होता है। इन शक्तियों का नाम नजूल श्रौर उरूज है। नजूल से तात्पर्य लय होने तथा उरूज से भाव उत्पन्न होने से है। प्रत्येक धर्म का श्राधार सत्य से है। इस सत्य को सूफी सम्प्रदाय में 'हक' कहते हैं। इस हक के अनुसार सर्वथा सत्य दो माने गये हैं। पगड़ी रहस्य भावना का प्रतीक है श्रौर अंगरखा वस्त्र पवित्र श्राचरण

का प्रतीक है। सांसारिक विषय वासना और मोह से बचने के लिये सूफो अंगरखा डाल रखते हैं जिससे प्रत्येक धर्माचरण ही करे।

सूफी कवियों ने विश्व में ईश्वर के निकट पहुँचने के साधनों में चार अवस्थाओं को माध्यम बनाया है। तब ही पूर्णतः अनन्त का साक्षात्कार होता है। सूफी मत के अनुसार वे अवस्थाएँ शरीअत, तरीकत, हकीकत और मारिफत हैं। कबीर के अनुसार गुरु के इंगित पर चलकर जीव उस मार्ग की समस्त कठिनाइयों के लिये कटिबद्ध होकर एवं कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड और ज्ञानकाण्ड की साधना समाप्त कर सिद्धावस्था (मारिफत) प्राप्त करता है जिसमें आत्मा का परमात्मा से मिलन होता है तथा अनहलक (सोऽहम्) सार्थक होता है। आत्मा और परमात्मा शराब और पानी की तरह मिल जाते हैं। आत्मा को विश्व के प्रत्येक स्पन्दन में, प्रत्येक कम्पन में वही एक लय, एक तान सुनाई देती है। कबीर जिसे अनहद कहते हैं सूफी उसे ही सङ्गीत कहते हैं जिसका आस्वादन आत्मा के निकट की वस्तु है। जिसको सुनकर शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शुद्धि होती है।

सूफी धर्म को मानने वाले कवियों में कुतबन, मंझन, उसमान, जायसी और नूरमुहम्मद उल्लेखनीय हैं जिनके मृगावती, मधुमालती, चित्रावली, पद्मावत और इन्द्रावती क्रमशः सुन्दर काव्य हैं। कवि काव्य के माध्यम से अव्यक्त की ओर संकेत करता है। लौकिक कथा को लेकर अलौकिकता की ओर मधुर संकेत किया गया है। इस प्रकार सूफी कवियों का परिचय देने के पश्चात् उनके काव्य की प्रमुख विशेषताओं पर भी विचार किया जायेगा।

उनके ग्रन्थों की सबसे पहली विशेषता यह है कि उनके प्रत्येक ग्रंथ की कथा का आधार हिन्दू परिवार है। पद्मावत, मधुमालती, मृगावती, चित्रावली आदि सभी ग्रंथों की कथा हिन्दू घरानों से सम्बन्धित हैं। सारे नाम हिन्दूपन लिए हुए हैं। हिन्दू संस्कृति, सभ्यता, रहन-सहन और रीति-रिवाज आदि का प्रतिबिम्ब इनके ग्रंथों में मिलता है। ग्रंथों में वर्णित नारियाँ भारतीय आदर्श नारियों की प्रतीक हैं। हिन्दू समाज का प्रतिबिम्ब नारी की स्थिति का चित्रण करने में ये मुसलमान कवि सिद्धहस्त सिद्ध हुए। जायसी का पद्मावत इन सब

ग्रंथों में विशेष महत्त्व का है। जायसी की नागमती भारतीय आदर्श पतिव्रता नारी की प्रतीक है। प्रायः प्रत्येक ग्रंथ में राजकुमार और राजकुमारी के प्रेम का प्रसंग प्रधान है। प्रत्येक ग्रंथ का आधार आधा काल्पनिक और आधा ऐतिहासिक है। जायसी के पद्मावत में भी इसी प्रकार इतिहास और कल्पना का प्रगाढ़ आलिंगन हुआ है।

प्रबन्ध काव्य की दृष्टि से प्रत्येक प्रेमकाव्य एक आदर्श उपस्थित करता है। घटनाओं की उचित योजना, उनमें परिस्थिति जन्य मोड़, आधिकारिक और प्रासंगिक कथाओं का परस्पर मिलन सब उचित रीति से दिखाया गया है। प्रत्येक सूफी काव्य 'मिश्र' नाम के कथा के प्रकार में रखा जायेगा। क्योंकि प्रत्येक में कल्पना और इतिहास का सुन्दर रूप से मिश्रण हुआ है। प्रबन्ध काव्य में मानव-जीवन का पूर्ण दृश्य होता है। उसमें घटनाओं की सम्बद्ध शृङ्खला और स्वाभाविक हृदय स्पर्शी, रसात्मकता की अनुभूति देने वाली होनी चाहिए। घटनाचक्र के अन्तर्गत ऐसे कार्य व्यापारों और वस्तुओं का चित्रण होना चाहिए जो हृदय में रसात्मक तरंगें उठाने में समर्थ हों। पद्मावत में ऐसे स्थल वहुत से हैं जो अगाध और गम्भीर हैं। रसात्मक और इतिवृत को भी लिये हुए हैं। पूर्वार्द्ध में प्रेम है उत्तरार्द्ध में मानव-जीवन की उदात्त वृत्तियों का समावेश है। कथावस्तु स्वाभाविक है कौतूहल उत्पन्न नहीं करती। जायसी ने मानव-जीवन के मार्मिक स्थलों को पहचान कर रखा है। घटनाएँ स्वतः ही कथा के उत्कर्ष की ओर बढ़ती हैं।

प्रत्येक सूफी ग्रंथ में अज्ञात प्रियतम की झलक दिखायी गई है। कथा के बीच-बीच में आध्यात्मिक साधना का वर्णन मिलता है। साधक और ईश्वर के मिलने में गुरू को माध्यम बनाया है। ज्ञानाश्रयी कवियों की भाँति सूफी कवियों ने भी गुरू को अत्यधिक महत्त्व दिया है। माया या शैतान को बाधक माना है। पद्मावत में स्थान-स्थान पर इसी आध्यात्मिकता, वेदान्त, हठयोग और वैष्णव मत के दर्शन होते हैं। वास्तव में इन कवियों का महान् उद्देश्य प्रेमतत्व की अभिव्यंजना करना ही था जिसकी तीव्र अभिव्यंजना के लिए उन्हें सुन्दर प्रेम कहानियाँ प्राप्त हुईं। फारसी में इश्क की दास्तान वाली जो मसनवियाँ हैं उन्हीं को आदर्श मानकर कहानी को काव्य का रूप दिया है।

सूफी काव्यों में गुरू को इतना अधिक महत्त्व दिया है, उसके पथ-प्रदर्शन के बिना जीव पथ से विचलित हो जाता है। सूफी कवियों ने संयोग की अपेक्षा वियोग पक्ष को अधिक महत्ता और विस्तार दिया है। सूफी कवि काव्य के अश्रुमय स्वरूप पर अधिक रीझे हैं। वियोगिनी की तड़पती हुई आत्मा ही सूफी कवियों में काव्य प्रसूत कर सकी है। जायसी के पद्मावत में नागमती का विरह वर्णन उत्कृष्ट है। भारत की आदर्श नारी नागमती ने स्त्रीत्व की रक्षा करते हुए मानव समाज के समक्ष अपनी विरहाग्नि का धूँआ प्रकट नहीं होने दिया। भारतीय नारी अपने दुःख की अभिव्यक्ति नहीं करती वह अन्दर ही अन्दर सुलगती है। विरह एक रुदन-हृदय की अभिव्यक्ति है बिहारी की नायिका के विरह के समान ऊहात्मक नहीं। विरह की तीव्रता में प्रकृति का प्रत्येक उपकरण उनके जलाने का कारण है। उन्हें ऐसा लगता है मानों अग्नि का पहाड़ हो, अंगारे हों। नागमती के आँखों से अश्रु नहीं निकलते बल्कि रक्त की बूंदे निकलती हैं। जायसी भक्त कवि थे। वे सांसारिक संकीर्णताओं को पारकर चुके थे। उन्होंने बड़े खुले रूप में प्रेमी की पीर को व्यक्त किया। उनकी विरह को अभिव्यंजना का माध्यम भारतीयता की प्रतिमूर्ति और आदर्श नारी जगत की प्रतिनिधि नागमती रही है। सूफी कवियों की वियोगिनी का चित्र देखिये ---

बदन पिअर जल उमगई, नैना, प्रगटत नहीं प्रेम के बैना।
तन विसअंबर मन बाऊर लटा, अरूझा प्रेम परी सब जटा ।।

कवि बार-बार चेतावनी देता है कि जिसमें प्रेम-सम्बन्ध निभाने की सामर्थ है वही इस चक्कर में पड़े नहीं तो —

प्रेम के फंद जानि कोई परई।
जनि कोई होई प्रेम कराता।
प्रेम वेलि जनि अरुझै कोई ।।

नागमती के विरह का प्रभाव उसके आँसुओं तक ही सीमित नहीं, पशु-पक्षी तथा समस्त जड़ चेतन तक विस्तृत है। विरह प्रिय के अभाव से उत्पन्न होता है यहाँ वही अभाव ही दुःख का मूल है अतः उस अभाव की पूर्ति के लिए विरहिणी पशु-पक्षियों से सहायता माँगती है :—

पियु से कहेउ संदेसड़ा हे भौंरा ! हे काग !
ते धनि विरहिन जरि मुई तेहिक धूँआ मोहि लाग ॥

सूफी काव्य मसनवी ढंग पर चोपाइयों में लिखा गया है। समस्त सूफी कवियों ने मंगलाचरणार्थ गुरु तथा शासक की स्तुति की है। ऐसा ज्ञात होता है कि जो कवि जिस शासक के आश्रय में रहता था उसी की स्तुति करता था। जायसी ने भी अपने काव्य में शेरशाह सुल्तान की प्रशंसा की हैं। अपने गुरु सय्यद अशरफ का गुणगान भी काव्य में कई स्थानों पर किया है।

सूफी काव्यों में हठयोग का प्रभाव पर्याप्त मात्रा में दिखाई पड़ता है। समस्त भारतीय साहित्य पर योग और सन्तों का अधिक प्रभाव रहा है। समय-समय पर भक्ति की लहर को तरंगित करने के लिये योगीराज और साधु-सन्त आते और भावों के कलुषित-पङ्क को बहा देते हैं। जायसी और कबीर के काल में हठयोगी तथा नाथपंथी साधुओं का बोलवाला था। यही कारण है कि कबीर और जायसी ने हठयोग की साधना के द्वारा आत्मा और परमात्मा का एकाकार करवाया है। योगी इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ी के द्वारा ब्रह्मरन्ध्र में भगवान का साक्षात्कार किया करते थे। सूफी कवियों ने भी इन्हीं क्रियाओं को भगवान प्राप्ति का माध्यम माना। इसके अतिरिक्त प्राणायाम करना, अखण्ड आसन जमाना, घोर तपस्या और साधना करना, भी भगवान प्राप्ति के साधन माने हैं।

सूफी ग्रन्थों में हिन्दू संस्कृति और मुस्लिम संस्कृति का ऐक्य सम्बन्ध स्थापित हुआ है। सूफी साहित्यकार मुस्लिम संस्कृति के होने पर भी हिन्दू संस्कृति के अनुयायी थे। उनकी कथाएँ भारतीय राजकुमार और राज-कुमारियों को लिये थी। इन्होंने हिन्दू फिलासफी (भारतीय दर्शन) में अपनी निष्ठा दिखाई है। यही कारण है कि इनके काव्य ग्रन्थों में बताया गया अद्वैतवाद भारतीय अद्वैतवाद से पूर्णतया साम्य रखता है। उन्होंने भगवत भजन पद्धति, हरिभजन, उससे मिलन तथा बिछुड़न की वही अवस्थाएं जीवात्मा की बताई हैं जो हम कबीर, सूर, प्रसाद जैसे भारतीय संस्कृति के पुजारी कवियों की पुस्तकों में पाते हैं।

सभी काव्यों में वर्णन बड़ी मर्मस्पर्शिनी भाव व्यंजना में हुआ है। विशेष कर पद्मावत में प्रेम या रति-भाव के अतिरिक्त स्वामिभक्ति, वीरदर्प, पतिव्रत तथा छोटे-छोटे भावों की व्यंजना बड़ी स्वाभाविक और हृदयग्राही है। धीरोदत्त नायक के हृदय की उदात्त भावनाओं दया, क्षमा, धैर्य, सहनशीलता, शूरवीरता आदि का पूर्ण परिचय मिलता है। प्रायः प्रत्येक ग्रन्थ का नायक आभिजात्य वर्ग का है। आदर्श प्रेमी दृढ़व्रती तथा वीर है।

अन्य ग्रन्थों की चर्चा न करके यदि केवल पद्मावत को ही लिया जाये तो एक विशेषता उसकी और सराहनीय है—वह है प्रस्तुत और अप्रस्तुत का सुन्दर समन्वय जो कि अन्य कवियों में साधारण मात्रा में या बहुत संगत रूप में नहीं मिलता। यही कारण है कि हम पद्मावत को अन्योक्ति या समासोक्ति मुक्तिकाव्य ग्रन्थ कहते हैं। प्रस्तुत के लिए अप्रस्तुत विधान और अप्रस्तुत के लिये प्रस्तुत विधान बोधवृति में सहायक और सुन्दर है साथ ही भावों के उद्दीपन में। प्रस्तुत पद में रूपक सराहनीय है—

तन चितउर मन राजा कीन्हा। हिय सिंघल बुधि पदमिनि चीन्हा।
गुरु सुआ जेइ पंथ दिखावा। बिन गुरू जगत को निरगुन पावा।।

इसी प्रकार समासोक्ति देखिये—

"कंवल जो विगसा मानसर बिन जल गएउ सुखाइ।"

जो बिना जल के सूखते कमल का अप्रस्तुतत दृश्य सामने रखा गया है वह सौन्दर्य की भावना के साथ-साथ सहानुभूति और दया के भावों को उद्दीप्त करता है।

पात्रों द्वारा स्थायी भावों की व्यंजना भी कराई गई है। यथा स्थान हर्ष क्रोध; घृणा तथा हास आश्चर्य आदि का आभास मिलता है। भावों के उत्कर्ष में जायसी पटु हैं। भावों का वर्णन अधिकतर वियोग वर्णन में हुआ है जो हृदयस्पर्शी और मार्मिक है।

सूफी कवियों की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि उनमें एकता की भावना वहु-मात्रा में थी। कबीर आदि सन्त कवियों ने सूफी सिद्धान्तों के आधार पर हिन्दू मुस्लिम वैमनस्य को दूर किया और एकता का बीज बोया

तथा ईश्वरोन्मुख-पथ को आलोकित किया परन्तु उनकी अटपटी नीरस और शुष्क वाणी जनता में स्थायी रूप से शान्ति कायम न कर सकी। जिससे जनता भी शीघ्र प्रभावित न हो सकी। सूफी कवियों ने उन्हीं सिद्धान्तों क लेकर उनमें अपने प्रेम की मिश्री घोल दी जिससे उसका अटपटापन मिट गया और जनता उस रस को पीकर शान्त और सन्तुष्ट हुई। कथावस्तु प्रकाशन तथा भाव प्रकाशन को दोहा चौपाई की पद्धति में ग्रहण किया। इस प्रकार इन सूफी कवियों द्वारा लिखी हुई गाथाओं को पढ़कर जनता मुस्लिम संस्कृति की ओर आकृष्ट हुई। आज भी जनता के हृदय में उर्दू साहित्य के प्रति काफी मात्रा में श्रद्धा है। सूफी साहित्य ने जीवन में सरलता का संचार किया जिससे उसका हिन्दी साहित्य में स्थायी रूप जम गया।

सूफी कवियों की भाषा ठेठ अवधी थी। ठेठ अवधी से अभिप्रायः यह है कि उनकी भाषा में संस्कृतपन कम था। ये जनकवि थे। जनकवि विद्वानों की भाषा को लेकर साधारण जनता की उपेक्षा नहीं करता। महावीर और बुद्ध ने संस्कृत जानते हुए भी अपने उपदेश पाली और अर्धमागधी में दिये। जायसी को अपनी बात जनता तक पहुँचानी थी अतः उन्होंने साधारण भाषा का ही आँचल पकड़ा। विशेषकर पद्मावत में भाषा की व्यवस्था ठीक है कहीं भी शब्दों को पाद-पूर्ति के लिये तोड़ा मरोड़ा नहीं है। उसमें लम्बे-लम्बे समस्त पदों का भी अभाव है। माधुर्य उनकी भाषा का प्राण है, जो अवधी की स्वाभाविक मिठास में और अधिक मिठास उत्पन्न करता है। कुछ फारसी शब्द भी अपने आप आ गये हैं। मुहावरों का सुन्दर और सहज प्रयोग हुआ है। जायसी आदि सूफी कवियों की भाषा लोक भाषा रही है अतः साधारण जनता के अधिक निकट है। प्रायः सभी कवियों ने कलापक्ष की मर्यादा को निभाने का प्रयत्न किया है।

इन सब विशेषताओं की ओर गहन रूप से विचार करने के पश्चात् उनके काव्य में आये हुए कुछ एक दोषों पर भी विचार कर लिया जाये तो कोई असंगत बात नहीं होगी। यद्यपि इनके काव्यों में भावपक्ष और कलापक्ष सम्बन्धी पूर्णता और व्यापकता थी तथापि कुछ एक दोष आ गये हैं।

प्रायः सम्पूर्ण काव्य में पुनरुक्ति दोष पाया जाता है। कहीं-कहीं तो एक ही भाव, एक ही उपमा और एक ही वाक्य कितनी बार आ गया है। सूर्य और चाँद के जोड़े से तो शायद ही कोई पृष्ठ खाली हो। पद्मावती के नखशिख का जो वर्णन सूआ रत्नसेन से करता है वही राघवचेतन अलाउद्दीन से करता है। सूखे सरोवर के फटने का भाव पद्मावत में कई बार आया है। कहने का अभिप्राय यह है कि पुनरुक्ति दोष के आ जाने से काव्य की सरसता नष्ट हो जाती है और पाठक विरक्ति अनुभव करने लगते हैं।

अरोचक और अनपेक्षित प्रसंगों का सन्निवेश करके भी कथावृत को अधिक लम्बा करने का प्रयत्न किया गया है। पद्मावत में ऐसे प्रसङ्ग पर्याप्त हैं जैसे व्यर्थ और अनावश्यक फलों, वृक्षों, पौधों आदि का वर्णन कर प्रकृति चित्रण किया गया है। सोलह शृङ्गारों तथा बारह आभूषणों का लम्बा चौड़ा वर्णन केवल पांडित्भ प्रदर्शनार्थ ही लिखा जान पड़ता है। प्रकृति चित्रण की नाम परिगणनात्मक पद्धति को अपना कर कई अस्वाभाविक और जलवायु के प्रतिकूल फलों, पौधों, वृक्षों आदि की सूची तैयार की गई है। युद्ध आदि के वर्णन मे घोड़ों की जातियों और किस्मों पर लम्बे चौड़े व्याख्यान हैं। अनुचित अर्थों का प्रयोग कर शब्दों की स्वाभाविकता को नष्ट किया गया है। परन्तु ऐसा दोष सर्वत्र नहीं मिलता। विभक्तियों; कारक चिह्नों, सर्वनामों आदि का कई स्थानों पर सर्वथा लोप मिलता है जिससे अर्थ स्पष्ट करने में गड़बड़ी पैदा हो जाती है।

इतना होने पर भी सूफी काव्यों को चरित काव्य की दृष्टि से वही सफलता मिली है। जो रामचरितमानस जैसे काव्य को मिली है! इन दोषों को देखकर हम पाठकों की रुचि को पद्मावत से विमुख नहीं करना चाहते। बड़े-बड़े महान् कवि भी ऐसे दोष काव्य में कर जाते हैं। ब्रजभाषा में ऐसा कोई चरित काव्य नहीं लिखा गया। चारण काल के वीर काव्यों के पश्चात हमें अवधी में ही इनका परिष्कृत रूप दिखाई दिया है। केशव की रामचन्द्रिका का काव्य-क्षेत्र में आदर रहा परन्तु उसे भी वह स्थान प्राप्त नहीं हुआ जो अवधी के क्षेत्र में रामचरित मानस और सूफी काव्यों को प्राप्त हुआ है। वास्तव में देखा जाय तो अवधी-भाषा के दो ही सर्वश्रेष्ठ रत्न हैं वे हैं—

'रामचरितमानस' और 'पद्मावत'। इस दृष्टि से जायसी का स्थान उन चुने हुए कवियों में कोई कम महत्त्व का नहीं।

प्रश्न ७—जायसी ने पद्मावत की कथा किसी ऐतिहासिक आधार पर लिखी है अथवा वह कवि कल्पना-प्रसूत है? सप्रमाण उत्तर दीजिए।

उत्तर—जायसी के पद्मावत में ऐतिहासिकता और कल्पना का मिश्रण है। पूर्वार्द्ध काल्पनिक और उत्तरार्द्ध ऐतिहासिक है। रत्नसेन की सिंहलद्वीप यात्रा से लेकर पद्मिनी को लेकर चित्तौड़ लौटने तक की कथा को पूर्वार्द्ध में माना जाता है तथा राघव को निकाले जाने से लेकर पद्मिनी के सती होने तक की कथा को ऐतिहासिक माना जाता है। उत्तरार्द्ध कथा में ऐतिहासिक आधार कहाँ तक है, यह जानने से पूर्व उसकी ऐतिहासिक कथा क्या है? यह जान लेना अधिक उचित है। कहते हैं साहित्य इतिहास नहीं होता, क्योंकि साहित्य में सनों और संवतों के बिना सब कुछ सत्य होता है परन्तु इतिहास में सनों और संवतों के अतिरिक्त सब कुछ झूठा होता है। यह इतिहास और साहित्य में सबसे बड़ा वैषम्य है। पद्मावत साहित्यिक कृति है। जायसी इतिहासकार न होकर एक महान् कलाकार हैं। अतः यदि हम एक महान् कलाकार के महान् ग्रन्थ में काव्यत्व न खोजकर ऐतिहासिक तथ्य खोजकर उसका स्थान निर्धारित करते हैं तो यह उसके साथ एक साहित्यिक अन्याय है। इससे मेरा यह अभिप्राय नहीं कि पद्मावत में ऐतिहासिक आधार नहीं है, या है भी तो मन गढ़न्त अधिक है। अपितु मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि ऐतिहासिक आधार खोजने के समय हमें कोरे इतिहासकार होकर ही उसका विश्लेषण नहीं करना चाहिये बल्कि कवि हृदय से "सब कुछ सम्भव हो सकता है" यह सोचकर कथा को वैज्ञानिक की भाँति चीरना फाड़ना नहीं चाहिये। कवि हृदय सब कुछ सत्यं शिवं और सुन्दरम् की दृष्टि से देखता है। उसके संसार का कोई भी पदार्थ निर्मूल नहीं। सभी कुछ चिरन्तन और चिरातीत हैं।

अतः हम कवि दृष्टि और कवि हृदय से जायसी के पद्मावत का विवेचन करेंगे। पद्मावत की ऐतिहासिक कथा इस प्रकार है ।

चित्तौड़ के दरबार में राघव चेतन नाम का एक बड़ा भारी पण्डित था जिसे यक्षिणी सिद्ध थी । एक दिन किसी बात पर वाद-विवाद हो गया और राजा रत्नसेन ने उसे देश-निकाले की आज्ञा दी । पद्मावत ने सुना तो उसे अच्छा नहीं लगा । पांडित्य और ज्योतिष के लिए पण्डित राघवचेतन की बड़ी प्रतिष्ठा थी और उसके बाहर जाने से उसकी ओर देखा और मुस्कराकर एक कंगन उतार कर उसकी ओर फेंका । राघवचेतन पद्मावती को देखकर मूर्च्छित हो गया । सखियाँ उसे होश में लाईं । यह हुआ राघवचेतन-देश-निकाला खण्ड । राघवचेतन दिल्ली गया । उसने अलाउद्दीन से पद्मावती के सौन्दर्य की चर्चा की । बादशाह अपनी चैतना को खो बैठा । जब स्वस्थ हुआ तो उसने राघवचेतन को एक पत्र देकर चित्तौढ़ भेजा । पत्र में पद्मावती को दिल्ली भेजने के लिए कहा । यहाँ पर राघवचेतन दिल्ली-गमन खण्ड, सखी भेद-वर्णन खण्ड या पद्मावती रूप चर्चा खण्ड समाप्त हो जाता है । जब रत्न-सेन ने यह पत्र पढ़ा तो उसे अपार क्रोध आया । उसने दूत को लौटा दिया । अलाउद्दीन युद्ध की तैयारी करके चित्तौड़ की ओर बढ़ा । (बादशाह चढ़ाई खण्ड) कई वर्षों तक युद्ध चलता रहा तभी दिल्ली पर हमले के समाचार आये। तब अलाउद्दीन संधि करके दिल्ली लौट आया , अलाउद्दीन ने रत्नसेन के पास दूत भेजकर पाँच रत्न माँगे जो समुद्र-मन्थन के समय निकले थे । चंदेरी का राज्य उसने चित्तौड़ को दिया । इस प्रकार उभय पक्षों में संधि हो गई (मेलखंण्ड) । दूर्ग में बादशाह की दावत हुई उस दिन शतरंज खेलते हुए दर्पण में बादशाह ने पद्मावती की छवि देखी । वहाँ उसकी वासना फिर जाग उठी । वह चेतनाहीन हो गया (बादशाह भोजखण्ड) । जब रत्नसेन बादशाह को पहुँचाने दुर्ग के बाहर गया तो उसके आदमियों ने छल से उसे बन्दी बना लिया । पद्मावती और नागमती को फिर विरह-दुःख भोगना पड़ा । उधर कुम्भलनेर के राजा देवपाल ने पद्मावती को फुसलाने के लिए दूती भेजी। पद्मावती ने अब इन चालों का सामना करने का निश्चय किया । उसने गोरा बादल नाम के दो अपने सरदारों से अपनी व्यथा सुनाई । उन्होंने उससे

रत्नसेन को छुड़ाने का वायदा किया। बादल का अभी गौना भी नहीं हुआ था। मां और पत्नी ने उसे रोकना चाहा परन्तु वह रुका नहीं। युद्ध के लिए चल दिया। बारह सौ पालकियों में बन्द हथियार बन्द सिपाही चले। पद्मावती वाली पालकी में लोहार बिठाया गया। यह प्रसिद्ध किया गया कि पद्मावती अलाउद्दीन के पास जा रही है। वे दिल्ली पहुँचे। अलाउद्दीन की आज्ञा लेकर चित्तौड़ की ओर भागा। इस युद्ध में गोरा वीरगति को प्राप्त हुआ। जब चित्तौड़ में आकर रत्नसेन पद्मावती से मिला तो रत्नसेन ने देवपाल की बात कही। देवपाल और रत्नसेन में युद्ध हुआ और रत्नसेन मार डाला गया। रत्नसेन की मृत्यु पर गढ़ की रक्षा बादल के हाथ में दे दी गई। पद्मावती और नागमती राजा के साथ सती हो गईं। उसी समय अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया परन्तु उसके हाथ केवल क्षार ही पड़ी। इस प्रकार पद्मावती की उत्तरार्द्ध कथा समाप्त होती है। उत्तरार्द्ध की इस कथा का लोक स्वरूप बहुत प्रसिद्ध है। जो थोड़े-थोड़े भेदों के साथ सारे भारतवर्ष में फैली हुई है। यदि काव्यत्व को पृथक कर दिया जाये तो कुछ एक पात्र अपने मूलरूप में ऐतिहासिक दिखाये गये हैं। राघवचेतन एक ऐसा पात्र है जो जायसी की अपनी कल्पना है। शेष पद्मावती, अलाउद्दीन, गोराबादल, रत्नसेन आदि पात्र ऐतिहासिक हैं।

इस कथा में ऐतिहासिकता कहाँ तक है यह देखेंगे। कथा का यदि विश्लेषण किया जाये तो उसके तीन केन्द्र बनते हैं नागमती, पद्मावती और अलाउद्दीन। सिंहल, चित्तौड़ और दिल्ली। नागमती पहले चित्तौड़ के राजा रत्नसेन की विवाहिता थी। पद्मावती पहले प्रेयसी थी फिर विवाहिता बनी। अलाउद्दीन भी रत्नसेन की भाँति पदमावती का प्रेमी था परन्तु अलाउद्दीन का प्रेम वासनात्मक है। उसने प्रेमी की साधना के मार्ग को न पकड़कर तलवार और छल का मार्ग पकड़ा है। इसलिये पद्मावती उसके हाथ नहीं आती। सिंघल, चित्तौड़ और दिल्ली तीनों ऐतिहासिक स्थान है। सिंघलद्वीप को जायसी नगर के रूप में चित्रित करता है। इससे स्पष्ट है कि आधुनिक सिंघलद्वीप (लङ्का) से उसका परिचय नहीं होगा। चित्तौड़ से रत्नसेन ने सिंघल तक की यात्रा की है इससे स्पष्ट है कि जायसी बम्बई के

आस-पास कहीं सिंहलद्वीप होना मानते हैं। राजा जब लौटता तो बङ्गाल-खाड़ी से होकर लौटता है इससे स्पष्ट है कि कवि सिंघलद्वीप को भारत के दक्षिणी ध्रुव में मानता है। इसके अतिरिक्त चित्तौड़ और दिल्ली आधुनिक चित्तौड़ और दिल्ली हैं।

जहाँ तक चित्तौड़गढ़ के आक्रमण का सम्बन्ध है, अर्थात् अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया है या नहीं, यदि किया है तो उसका ऐतिहासिक आधार क्या है, यह जानने के लिए टॉड राजस्थान में दिया जो चित्तौड़गढ़ पर अलाउद्दीन का आक्रमण है, उसे आधार मानना पड़ेगा। पं० रामचन्द्र शुक्ल ने भी उसी को आधार मानकर पद्मावत् के ऐतिहासिक आधार को स्पष्ट किया है। उसमें चित्तौड़गढ़ पर अलाउद्दीन के आक्रमण का परिचय इस प्रकार है—"विक्रम सं० १३३१ में लखनसी चित्तौड़ के सिंहासन पर बैठा। वह छोटा-सा था इसलिए उसका चाचा भीमसी राज्य करता था। भीमसी का विवाह सिंघल-द्वीप के राजा हम्मीर की कन्या पद्मावती से हुआ था जो रूप, गुण और सौन्दर्य में अद्वितीय थी। उसके रूप की चर्चा सुनकर उस पर मुग्ध हुआ भ्रमर अलाउद्दीन ने चित्तौड़गढ़ पर चढ़ाई की। घोर युद्ध के उपरान्त अलाउद्दीन ने सन्धि का प्रस्ताव भेजा। उसमें सन्धि की शर्त्त पद्मावती के रूप-सौन्दर्य से अपनी काम-पिपासा बुझाने की ओर थी। तब अलाउद्दीन ने पद्मावती को दर्पण में से देखा। युद्ध बन्द हो गया और उसे थोड़े से सैनिकों के साथ चित्तौड़गढ़ के भीतर लाया गया। जब राजा भीमसी अलाउद्दीन को विश्वासपात्र समझ कर पहुँचाने गया तब अलाउद्दीन के बहुत से सैनिक पहिले ही घात लगाये बैठे थे, ज्योंही राजा बाहर आया वह पकड़ लिया गया और मुसलमानों के शिविर में पहुँचा दिया गया। राजा को कैद करके यह घोषणा करदी गई कि जब तक पद्मिनी नहीं भेज दी जायेगी तब तक राजा नहीं छूट सकता। इस बात को सुनकर चित्तौड़ में हाहाकार मच गया। पद्मिनी ने इस प्रसङ्ग में गोरा, बादल से सहायता के लिये याचना की। गोरा बादल ने पद्मावती की रक्षा का प्रण किया तथा अलाउद्दीन से कहलवा भेजा कि पद्मावती अपनी सखियों सहित आ रही है परदे का पूरा प्रबन्ध होना चाहिए। पद्मावती के साथ उसकी बहुत सखियाँ भी होंगी जो उसे केवल विदा करने आयेंगी। अन्त में सात सौ पालकियाँ

अलाउद्दीन खेमे के पास पहुँची। हरएक पालकी को उठाने वाले छः कहार थे वे भी सशस्त्र सैनिक थे पालकी में भी सैनिक ही बैठे थे। जब पालकियाँ शाही खेमे के पास पहुँची तो सब ओर कनातें घेर ली गईं। राजपूत पालकी में राजा को बिठाकर ले गये। पालकियों के सैनिकों ने अलाउद्दीन का डट कर मुकाबिला किया। अलाउद्दीन पहले से सतर्क था। उसने अपनी सेना को पीछा करने का हुक्म दिया परन्तु वे इस बात में असफल रहे। पालकियों से निकले राजपूत बड़ी वीरता से पीछा करने वालों का सामना करते रहे और एक-एक करके कट कर मर गये।

इसी प्रकार भीमसी के घोड़े का भी पीछा किया गया। पीछा करती हुई सेना के साथ फाटक पर बड़ा घोर युद्ध हुआ और गोरा ने इस युद्ध में प्राण दिए। अलाउद्दीन ने संवत् १३४६ में फिर चित्तौड़ पर आक्रमण किया। इसी दूसरी लड़ाई में राजा अपने ग्यारह पुत्रों के साथ मारे गए। रानी पद्मिनी ने भी जौहर दिखाया। भीमसी ने भी युद्ध में शरीर त्याग दिया और राजपूत रानियों ने भी सहर्ष अग्नि की गोद को ग्रहण कर अपनी जौहर की प्रथा को निभाया।"

टॉड का दिया वर्णन राजपूताने में रक्षित चारणों के इतिहासों के आधार पर है। दो-चार ब्योरों को छोड़कर ठीक यही वृतान्त "आईने अकबरी" में दिया हुआ है। "आईने अकबरी" में भीमसी के स्थान पर रतनसी नाम है और रतनसी के मारे जाने का ब्यौरा भी दूसरे ढङ्ग से दिया गया है। आईने अकबरी में लिखा है कि अलाउद्दीन दूसरी बार लड़ाई में हार कर लौटा और चित्तौड़ से सात कोस की दूरी पर आकर उसने मैत्री का प्रस्ताव भेजा। रतनसी भी अलाउद्दीन की बार-बार की लड़ाइयों से ऊब गया था। उसने भी सन्धि का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। जिस समय रतनसी उससे मिलने गया तो अलाउद्दीन ने विश्वासघाती होकर उसके पेट में छुरा घौंप कर मार डाला। फिर अलाउद्दीन चित्तौड़ की ओर लौटा और उस पर अधिकार कर लिया। रतनसी मारा गया और पद्मावती चिता में जलकर मर गई।

इन दोनों ऐतिहासिक कथाओं के साथ जायसी की कथा का मिलान करने से कई बातों का पता चलता है। पहली बात तो यह है कि जायसी ने जो

रत्नसेन का नाम दिया है वह कल्पित नहीं क्योंकि समसामयिक जितने भी ग्रंथ मिलते हैं, उनमें या उनसे पीछे के ग्रंथों—जैसे "आईने अकबरी" में 'रतनसी' ही नाम निकलता है। यह नाम अवश्य इतिहासज्ञों में प्रसिद्ध है। दूसरी बात यह कि जायसी ने रत्नसेन का मुसलमानों के हाथ मारा जाना न लिखकर जो देवपाल के साथ द्वन्द्व युद्ध में कुम्भलनेर गढ़ के नीचे मारा जाना लिखा है उसका आधार शायद ठीक है। आईने अकबरी की घटना इससे अपवाद सिद्ध होती है।

अपनी कथा को काव्योपयोगी बनाने के लिए ऐतिहासिक घटनाओं में फेरफार करने का अधिकार कवि को बरावर रहता है। जायसी ने इस अधिकार का प्रयोग कई स्थानों पर किया है। सबसे पहले तो राघव चेतन की कल्पना जायसी की अपनी चीज है। इसके उपरान्त अलाउद्दीन के चित्तौड़ गढ़ घेरने पर सन्धि की जो शर्त्त प्रस्तुत हुई वह भी कल्पित है। इतिहास में दर्पण के बीच छाया दिखाने की कथा प्रसिद्ध है। परन्तु दर्पण में प्रतिविम्व देखने की बात का जायसी ने आकस्मिक घटना के रूप में वर्णन किया है। इतना परिवर्तन कर देने से नायक रत्नसेन के गौरव की पूर्ण रक्षा हुई। पद्मिनी की छाया को दिखाना और रत्नसेन की इसमें स्वीकृति देना कवि को अभीष्ठ प्रतीत नहीं हुआ। तीसरा परिवर्तन यह किया है कि रत्नसेन का अलाउद्दीन के शिविर में बन्दी न होकर दिल्ली में बन्दी होना लिखा है। इस घटना के रखने से कवि को दूती और जोगिन के वृत्तान्त, रानियों के विरह और विलाप तथा गोरा वादल के प्रयत्न विस्तार करने का पूरा अवसर मिला है। इसी अवकाश के भीतर जायसी पद्मिनी के स्त्रीत्व की मनोहर व्यंजना के भीतर बालक का क्षात्र और शौर्य का मनोरम और मर्मस्पर्शी चित्र प्रस्तुत किया है। ये दृश्य पाठकों के हृदय को द्रवीभूत करने के लिए पर्याप्त हैं। देवपाल का दूती भेजना तथा बादल और उसकी स्त्री का सम्वाद ये दोनों प्रसङ्ग कल्पित हैं। देवपाल कल्पित पात्र है। पीछा करते हुए चित्तौड़ पहुँचने से पहले हा कवि ने रत्नसेन का देवपाल के हाथ मारा जाना बता दिया है। अलाउद्दीन के हाथ से पराजित न होकर कवि ने चरित नायक की रक्षा की है।

पद्मिनी सिंहलद्वीप की नहीं हो सकती। यदि सिंहलद्वीप नाम ठीक मानें तो वह राजपूताने या गुजरात का कोई स्थान होगा। न तो सिंघलद्वीप में

चौहान आदि राजपूतों की बस्ती का कोई पता है न इधर हजार वर्ष से कूप-मण्डूक बने हुए हिन्दुओं के सिंघलद्वीप में जाकर विवाह सम्बन्ध करने का। दुनियाँ जानती है कि सिंघलद्वीप के लोग कैसे काले-कलूटे होते हैं। वहाँ पर पद्मिनी स्त्रियों का पाया जाना गोरखपंथी साधुओं की कल्पना है। ऐसा माना गया है कि सिंहलद्वीप में ही बौद्ध शास्त्रों के अच्छे-अच्छे ग्रंथ पाए गए। इसी से भारतवर्ष के अवशिष्ट योगमार्गी बौद्धों में सिंहलद्वीप एक सिद्धपीठ समझा जाता रहा। इसी धारणा के अनुसार गोरखनाथ के अनुयायी भी सिंहलद्वीप को एक सिद्धपीठ मानते हैं। उनका कहना है कि योगियों को पूर्ण सिद्ध प्राप्त करने के लिए सिंहलद्वीप जाना पड़ता है जहाँ साक्षात् शिव परीक्षा के पीछे सिद्धि प्रदान करते हैं। पर वहाँ जाने वाले योगियों के सम, दम की पूरी परीक्षा होती है। इस प्रकार उत्तरार्द्ध कथा का कुछ अंश ऐतिहासिक और कुछ कल्पना के आधार पर गढ़ा गया है जिसके साथ कुछ जन-श्रुतियाँ और भ्रांतियाँ भी हैं।

जहाँ तक पूर्वार्द्ध कथा का सम्बन्ध है उसके लिए भी प्रश्न पैदा होता है। वैसे तो यह सर्वसम्मत और सर्वमान्य बात है कि पूर्वार्द्ध काल्पनिक है परन्तु ऐसा भी सुना जाता है कि वह जायसी द्वारा कल्पित ही नहीं अपितु जायसी से पूर्व भी यही कथाएँ प्रचलित थीं। यह तो माना जाता है कि जायसी इतिहास-विज्ञ थे क्योंकि उन्होंने रत्नसेन और अलाउद्दीन के नाम सुने थे परन्तु कहानी कहने वाले नाम नहीं लेते हैं, वे केवल यही कह देते हैं कि 'एक राजा था' एक दिल्ली का बादशाह था। इस सम्बन्ध में यही अनुमान लगाया जा सकता है कि जायसी ने प्रचलित कहानी को ही लेकर सूक्ष्म ब्यौरों और कल्पना के द्वारा सुन्दर काव्य का रूप दे दिया है। "हुसैन गजनवी" ने "किस्सए पद्मावत" नाम का एक फारसी काव्य लिखा है। सन् १६५२ में रायगोविन्द मुंशी ने पद्मावत की कथा फारसी गद्य में 'तुकफतुल कुलूब' के नाम से लिखी। उसके पीछे भी इसी कहानी को शेरों में गुलामअली और मीरजियाउद्दीन ने लिखा। मलिक मुहम्मद जायसी ने इसी को सन् १५२० में लिखा।

कविवर जायसी के पद्मावत में इतिहास और भूगोल दोनों का सुन्दर दिग्दर्शन नहीं मिलता। इसका कारण यह है कि अपने देश के सम्बन्ध में कुछ

जानना भारतवासियों को रुचिकर नहीं था। अतः जायसी ने भी सिंहल और लङ्का आदि के नाम ही याद रखे। उन्हें इतना नहीं पता कि सिंहल की वास्तविक स्थिति क्या है। जायसी सिंहलद्वीप को चित्तौड़ के पूर्व में समझते हैं। जैसा कि इस चौपाई से प्रगट होता है—

"पच्छिउ कर वर पुरुब कबारी,
जोरी लिखी न होई निवारी।"

इतने अज्ञान के होते हुए भी पद्मावत में भारत के प्राचीनकाल की विलक्षण स्मृति का परिचय मिलता है। भारत के प्राचीन हिन्दुओं के ऊर्षवपोत भारत के पूर्वीय समुद्रों में अवश्य दौड़ा करते थे। पश्चिमी समुद्रों में जाने का प्रमाण तो वैसा नहीं मिलता, पूर्वी समुद्रों का मिलता है। जैसे जावा, सुमात्रा तथा वाली द्वीपों में अभी तक हिन्दुओं के मन्दिर तथा बस्तियाँ पाई जाती हैं। फाहियान नामक चीनी यात्री चन्द्रगुप्त के समय में भारतवर्ष में आया था और सिंहल तथा जावा होते हुए ही अपने देश को लौटा था। जायसी के समय में में यद्यपि हिन्दुओं का भारतवर्ष के बाहर जाना बन्द हो गया था फिर भी समुद्र से उस पुराने घाट की स्मृति बनी हुई है। चित्तौड़ तक से सिंहल जाने का मार्ग कवि की ऐतिहासिक और भौगोलिक जानकारो का द्योतक है।

जायसी ने अलाउद्दीन, गौरा बादल, रत्नसेन, चित्तौड़ आदि जो नाम वर्णित किए हैं इससे स्पष्ट है कि वह जानते हैं कि घटना किस स्थान पर घटी है। इसके अतिरिक्त अलाउद्दीन की चढ़ाइयों का भी उन्हें पूरा-पूरा पता है। जैसे देवगिरि, रणथम्भोरगढ़ पर की चढ़ाई का वर्णन मिलता है। देवगिरि पर अलाउद्दीन ने अपने चाचा जलालुद्दीन के समय में सन् १२९४ में चढ़ाई की थी। रणथम्भौर पर चढ़ाई उसने बादशाह होने के चार वर्ष बाद की। दूसरे वर्ष १३०१ में रणथम्भौर का गढ़ टूटा था और राजा हम्मीरदेव मारा गया था। दोनों घटनायें चित्तौड़ टूटने के बाद की हैं। अतः इनका उल्लेख ग्रंथ में इतिहास की दृष्टि से अत्यन्त उचित हुआ है।

अलाउद्दीन के इतिहास और उसके समय की घटनाओं का जायसी को पूरा ज्ञान है। मंगोलों के देश का नाम उन्होंने हरेव लिखा है। **अला**उद्दीन के

समय में मंगोलों के कई आक्रमण हुए थे जिनमें सबसे जबरदस्त हमला १३०३ ई० में हुआ है। सन् १३०३ ई० में ही अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर हमला किया था। इस प्रकार अलाउद्दीन का इतिहास जायसी से अपरिचित नहीं।

इस प्रकार यदि पद्मावत को सम्यक् दृष्टि से देखा जाये तो जायसी का ऐतिहासिक परिचय हमें सत्य और ठोस रूप से मिलता है। यद्यपि जायसी कवि थे अतः कवि होने के नाते घटनाओं और सनों की उपेक्षा कवि से हो ही जाती है क्योंकि कवि भावुक होता है। कल्पना के माध्यम से वह आकाश के तारे भी तोड़कर ला सकता है। सृष्टि के गुह्यतम और अगम्य स्थानों पर पहुँच कर उसका वर्णन कर सकता है फिर भी इतना होने पर भी जायसी ने इतिहास की सत्यता को नष्ट नहीं होने दिया। जहाँ कल्पना की आवश्यकता थी वहाँ उससे भी सहायता ली। फिर भी इतिहास की मौलिकता को नष्ट नहीं होने दिया।

प्रश्न ६—सप्रमाण सिद्ध कीजिए कि पद्मावत में इतिवृत्तात्मकता और रसात्मकता का मणिकाञ्चन संयोग है।

उत्तर—जायसी के पद्मावत को हम दो भागों में बाँट सकते हैं--१—ऐतिहासिक आधार २—काल्पनिक आधार। रत्नसेन की सिंघलद्वीप तक की यात्रा से लेकर पद्मिनी को लेकर लौटने तक की कथा को हम पूर्वार्द्ध मान सकते हैं। इसके बाद राघव के निकाले जाने से लेकर पद्मिनी के सती होने तक को उत्तरार्द्ध में मानते हैं। परन्तु ध्यान देने की बात यह है कि इसका पूर्वार्द्ध तो सर्वथा काल्पनिक है और उत्तरार्द्ध ऐतिहासिक है। इसी को देखकर यह कहा जा सकता है कि पद्मावत में कल्पना और इतिहास का या इतिवृतात्मकता और रसात्मकता का मणिकांचन संयोग है। ऐतिहासिक कथा का विकास इतिवृत्ति को दृष्टि में रखकर किया गया है और पूर्व पद्मावत में कल्पना को आधार बनाया गया है ताकि इतिहास से उसमें नीरसता न आजाये। फिर प्रेम काव्य

का एक मात्र लक्ष्य भी प्रेम पक्ष की अलौकिकता को स्पष्ट करना होता है। ऐतिहासिक और काल्पनिक तथ्य का निरूपण और विचार करने से पूर्व पद्मावत की पूर्ण कथा पर भी दृष्टिपात कर लेना युक्तिसङ्गत होगा क्योंकि बिना कथा के जाने उसमें ऐतिहासिकता और कल्पना की खोज करना ठीक नहीं। अतः इसकी संक्षेप में कहानी इस प्रकार है।

आरम्भ में कवि सिंघलद्वीप का वर्णन करते हुए आगे बढ़ता है। गंधर्व-सेन सिंघलद्वीप का राजा था। उसकी रानी का नाम चम्पावती था। दोनों की एक ही सन्तान थी जिसका नाम पद्मावती था। पढ़ने में दक्ष और अनन्य सुन्दरी थी। उसके पास एक पालतू तोता था। पद्मावती सदैव एकांत में उस तोते से देश-देश की बातों को सुना करती। वयस्क हो जाने पर भी जब पद्मावती का ब्याह नहीं हुआ तो पद्मावती चिन्तित रहने लगी। एक दिन हीरामन तोते से उसने अपने मन की व्यथा कही। तोते ने उसे धैर्य बंधाते हुए कहा कि मैं तुम्हारे लिये श्रेष्ठ वर की खोज करूँगा तुम मुझे मुक्त कर दो। इस बात को सुनकर पद्मावती के किसी शत्रु ने राजा गंधर्व सेन से यह बात कहदी। राजा ने उस तोते को मरवा देना चाहा। तोते ने वहाँ से भागना चाहा परन्तु पद्मावती ने उसे आज्ञा नहीं दी। एक बार पद्मावती अन्य सखियों सहित जलक्रीड़ा करने गई तो तोता पीछे से उड़कर स्वतन्त्र विहार करता हुआ किसी बहेंलिये से पकड़ा गया। यहाँ तक तो सुआ खण्ड समाप्त होता हैं। अब दूसरे पक्ष की कथा आरम्भ होती है जिसका सम्बन्ध चित्तौड़ से हैं। राजा चित्रसेन का पुत्र रत्नसेन चित्तौड़ में राज्य करता था। बचपन में ही उसको ज्योतिषियों ने बताया था कि तू पद्मावती से विवाह करेगा और सिंघलद्वीप तक की यात्रा करेगा। एक बार उसने एक व्यापारी से अन्य वस्तुओं के साथ एक तोते को भी खरीदा। तोते को रत्नसेन ने अपने रनिवास में रखा। उसकी पत्नी नागमती तोते से बातें कर अपने दिल को बहलाया करती थी। एकबार नागमती के यह पूछने पर कि संसार में मुझसे सुन्दर कौन है, हीरामन तोतें ने सिंधलद्वीप की रानी पद्मावती के सौन्दर्य की चर्चा की। नागमती ने उस तोते को मरवा देना चाहा कि ऐसा न हो रत्नसेन पद्मिनी का सौन्दर्य वर्णन सुन मुग्ध हो और उसके लिये चल पड़े और प्रियवियोग का

दुःख मुझे उठाना पड़े। धाय ने तोते को न मारकर राजा रत्नसेन को ही सौंप दिया। राजा ने जब पद्मावती का सौन्दर्य वर्णन, गुण-वर्णन सुना तो उसके हृदय में पूर्वराग उत्पन्न होगया। पद्मावती का नखशिख वर्णन सुनकर राजा को मूर्छा आ जाती है। अनेक प्रकार से समझाने पर भी राजा नहीं मानता और सिंघलद्वीप की यात्रा के लिये चल पड़ता है। योगी वेष में मेखल, सिंघी और चक्र इत्यादि को धारण करके, ज्योतिषियों की अवहेलना करते हुए भी वह यात्रा को चल ही पड़ता है। सारा चित्तौड़ विरह में उमड़ पड़ता है। मार्ग मे जाते जाते राजा के ऊपर अनेक प्रकार के कष्ट आते हैं। फिर भी पर्वतों, कन्दराओं, नदियों, समुद्रों और घाटियों आदि को पार करता हुआ राजा सिंघलद्वीप में पहुँचता हैं। राजा के योग का प्रभाव अलक्षित रूप से पद्मावती पर भी होता है। वह भी वियोग के कारण दुःखी रहती है। जब हीरामन उसके पास पहुँचा तो पद्मावती जैसे जी उठी। सारी कथा को सुन उसके मन में अभिमान और गर्व का संचार हुआ। हीरामन के बहुत कहने पर उसने राजा से भेंट करना स्वीकार कर लिया परन्तु पद्मावती को देखते ही रत्नसेन मूर्छित हो गया। पद्मावती ने उसके हृदय पर अङ्कित कर दिया कि योगी तूने भीख लेना नहीं सीखा है, जब घड़ी आई तब तू सो गया। तू अभागा है। स्वप्न में उसी रात पद्मावती को हनूमान के द्वारा लङ्का के लूटने का दृश्य दिखाई दिया जिससे स्पष्ट था कि पद्मावती भी अपने अभीष्ट की प्राप्ति करेगी। बड़ी कठिनाइयों को सहते हुए राजा रत्नसेन ने गंधर्वसेन को विवाह के लिये तैयार किया। अनेक प्रकार के साज सजाये। बरात आती देखकर पद्मावती भावावेश में मूर्छित हो गई। अन्त में उसे सखियों द्वारा महल के सातवें खण्ड में भेजा गया, जहाँ पर दोनों की सोहागरात को आयोजन हुआ था। पद्मावती ने भी संकोच दूर करके सुख पूर्वक रतिक्रीड़ा की। इस प्रकार राजा रत्नसेन ने पद्मावती को प्राप्त किया। इसके साथ ही हमें नागमती को भूलना नहीं चाहिये। नागमती प्रिय के वियोग की ज्वाला में जलती हुई दग्ध हो रही है। पद्मावत का यह भाग भावपक्ष की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। रत्नसेन ने नागमती के विरह की कथा एक पक्षी से सुनी जिससे उसको चित्तौड़ की याद सताने लगी। रत्नसेन ने राजा से विदा चाही

मगर मार्ग में अनेकों बाधाएँ थीं। रत्नसेन धनधान्य से भरपूर होकर पद्मावती को लेकर वहां से चल पड़ा। समुद्र में जहाज के डूब जाने से दोनों प्रेमी बिछुड़ गये, पर संयोग वश दोनों का मिलन तत्काल ही हुआ। इस प्रकार दोनों चित्तौड़ में पहुंचे। चित्तौड़ भर में उत्सव मनाये गये। नागमती की विपत्ति दूर हुई। दोनों रानियाँ सुख से रहने लगी। चिरकाल बाद दोनों के यहाँ नागसेन और पदमसेन नाम के दो पुत्र पैदा हुए।

यहाँ तक की कथा पूर्वार्द्ध है जिसका कोई आधार नहीं। केवल काल्पनिक कथा को गढ़कर इतिवृत में रसात्मकता उत्पन्न की गई है। कवि ने उत्तरार्द्ध में जो कथा ली है उसका सम्बन्ध पूर्वार्द्ध कथा से बड़े सुन्दर रूप से जोड़ा गया है जिसकी विवेचना आगे होगी। इससे पहले यह जानना आवश्यक है कि इसका ऐतिहासिक आधार क्या है ?

चित्तौड़ के कारोबार में राघवचेतन नाम के पंडित का बहुत हाथ था। राजा के साथ किसी प्रकार से विवाद हो जाने पर उसे देश निकाला दे दिया गया। उसने दिल्ली जाकर बादशाह अलाउद्दीन के समक्ष पद्मावती की चर्चा की। अलाउद्दीन सुनकर होश खो बैठा। चेतनता आने पर राघवचेतन ने उसे एक मार्ग सुझाया। राजा रत्नसेन के पास अलाउद्दीन ने एक पत्र भेजा जिसमें पद्मावती को अपने रनिवास में लाने की चर्चा थी। रत्नसेन ने उस पत्र को स्वीकार न किया। अलाउद्दीन ने उस पर चढ़ाई की। कई वर्षों तक युद्ध चलता रहा अन्त में दोनों की सन्धि हुई और पद्मावती की प्रतिछाया को दर्पण में से दिखा दिया गया। उसके हृदय में पद्मावती के प्रति वासना जाग उठी। रत्नसेन उसे बाहर दुर्ग तक छोड़ने गया। तब अनेक मुगल सैनिकों ने उसे छल से बंदी कर लिया। पद्मावती ने फिर छल से काम लिया। गोरा-बादल सहित बारह सौ पालकियों में हथियार बन्द सैनिक लेकर वह चल पड़ी और यह प्रसिद्ध कर दिया कि पद्मावती अलाउद्दीन के पास जा रही है। चाबी देने के बहाने पद्मावती रत्नसेन से मिली। रत्नसेन को बादल भगाकर ले गया। गोरा युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुआ। देवपाल के द्वारा चढ़ाई होने पर रत्नसेन मारा गया। पद्मावती और नागमती राजा के साथ ही चिता में

जलकर मर गईं। उसी समय अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया परन्तु उसके हाथ अन्त में क्षार ही आई।

इस प्रकार पद्मावत की उत्तरार्द्ध कथा चलती है। इसका ऐतिहासिक आधार इतना ही है। ऐतिहासिकता के स्पष्टीकरण के लिये टाड्सराजस्थान में दिया हुआ चित्तौरगढ़ पर आक्रमण यदि पढ़ा जाय तो ठीक है। उसके अधार पर विक्रम सं० १३०३ में लखनसी चित्तौड़ के सिंहासन पर बैठा था। उस पर ही अलाउद्दीन ने चढ़ाई की थी। इस प्रकार ऐतिहासिक कथा-वस्तु के तीन केन्द्र मुख्य रूप से बनते हैं नागमती, पद्मावती और अलाउद्दीन। क्रमशः चित्तौड़, सिंघलद्वीप और दिल्ली। नागमती चित्तौड़ के राजा रत्नसेन की विवाहिता थी। पद्मावती पहले प्रेयसी थी पीछे विवाहिता बन गई। अलाउद्दीन का पद्मावती के प्रति जो प्रेम है वह वासनात्मक और अश्लील है। रत्नसेन का प्रेम शुद्ध और सात्विक है।

सिंहल, चित्तौड़ और दिल्ली तीनों ही ऐतिहासिक स्थान हैं। जायसी जिस सिंहल द्वीप का चित्रण करता है वह बम्बई के आस पास माना जा सकता है। वैसे तो सिंघलद्वीप लंका को ही कहते हैं। कवि सिंघलद्वीप को भारत के दक्षिण में मानता हैं क्योंकि उसने जगन्नाथपुरी से सिंघल तक के जलमार्ग का वर्णन किया है। चित्तौड़ और दिल्ली तो प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थान हैं ही।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से पता चला है कि १३०३ ई० में अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया था। चित्तौड़ाधिपति कुछ सैनिकों के साथ दक्षिण भाग गये। पद्मावती तथा नागमती ने जौहरव्रत का पालन कर अपने सतीत्व की रक्षा की। जायसी ने जिस रूप में ऐतिहासिक तथ्य ग्रहण किया है, सम्भव है उस समय में यही तत्व प्रसिद्ध पा रहा हो। उत्तरार्द्ध में कवि ने कई चीजों को अपनी तरफ से भी जोड़ दिया हैं। राघव चेतन की पैदायश कवि की अपनी सूझ है। यह कोई ऐतिहासिक पात्र नहीं। अलाउद्दीन के पास कोई व्यक्ति भी उसे बहकाने को नहीं जाता। उसने तो स्वयं ही पद्मा-वती की सुन्दरता पर मोहित हो उसे तलवार के बल पर लेना चाहा था।

इस प्रकार जो ऐतिहासिक आधार 'टाड' ने दिया वही राजपूताने के रक्षित चारणों के सुरक्षित इतिहासों में मिलता है। दो चार ब्यौरों को छोड़कर शेष सारा वर्णन हमें "आइने अकबरी" में भी प्राप्त है "आइने अकबरी" में भीमसी के स्थान पर रत्नसी नाम है जायसी ने सम्भवतः रत्नसेन की कल्पना इसी नाम से की हो। दूसरा नाम देवपाल का है जो कि इतिहासों में वर्णित नहीं। इससे राघव चेतन और देवपाल को हम व्यर्थ के पात्र मानते हैं क्योंकि इनका ऐतिहासिक आधार कोई नहीं। खैर! इन छोटी-छोटी बातों का और साधारण परिवर्तन का अधिकार कवि को होता है क्योंकि उसे तो प्रत्येक कथा काव्योपयोगी बनानी होती हैं। एक अन्य स्थान पर जायसी ने परिवर्तन किया है वह यह कि इतिहास में पद्मावती की प्रतिच्छाया को दर्पण में दिखाने की शर्त पूर्व निश्चित है परन्तु जायसी ने इसे आकत्मिक घटना का रूप देकर रत्नसेन के गौरव की रक्षा की है। युद्ध के पश्चात् रत्नसेन को चित्तौड़ के शिविर में बन्दी न दिखाकर इसे दिल्ली की कैद में बन्दी दिखाया है क्योंकि इसके द्वारा कवि से अनेक लक्ष्यों की पूर्ति होती थी। कवि को, दूती और जोगिन का वृतान्त, रानियों का विरह विलाप और गोरा बादल का प्रयत्न, विस्तार से करने का अवसर मिला है।

इसी बीच में कवि ने पद्मावती की सतीत्व-रक्षा की व्यंजना के लिए अच्छी भूमिका तैयार कर ली, गोरा और बादल के क्षात्रतेज को दिखाया तथा उन्हें कठोर कर्त्तव्य के प्रति अग्रसर दिखाया। देवपाल के हाथों रत्नसेन को मरवाकर भी कवि ने नायक के गौरव की रक्षा की है। यदि वह प्रतिनायक के हाथों मारा जाता तो उसकी अभिमान-शिखा इतनी उद्दीप्त न होती। पद्मिनी को अनन्य सुन्दरी बताना कवि की अपनीं सूझ है क्योंकि सिंघलद्वीप के निवासी जलवायु के आधार पर कालेकलूटे ही माने गये हैं इस प्रकार के वर्णन से ज्ञात हो गया कि ऐतिहासिक कथा कहाँ तक इतिहास पर आधारित है। अब इस सम्बन्ध में अनुमान यही लगाया जा सकता है कि जायसी ने प्रचलित कहानी को ही लेकर, सूक्ष्म ब्यौरों की मनोहर कल्पना करके उसे काव्य का सुन्दर रूप दिया। इसी कथा को लेकर अन्य कई काव्य लिखे गये।

जहाँ तक पूर्वार्द्ध कथा का सम्बन्ध है वहाँ तक उसमें प्रेम ही प्रेम है। काल्पनिक कथा में रूप, गुण आदि का ब्यौरा सुनकर रत्नसेन मूर्च्छित हो जाता है। इसी भाव के कारण उसके हृदय में प्रेम की प्रेरणा पैदा होती है। यह बात स्वाभावतः स्वतः सिद्ध है कि परिचय के विना प्रेम पैदा नहीं हो सकता। वह परिचय पूर्णतया साक्षात् होना चाहिए। यहाँ पर जायसी ने इस स्वाभाविकता पर ध्यान नहीं दिया। प्रैम-पूर्णता का प्रस्फुटन कई स्थानों पर हुआ है। पद्मावती शिव मन्दिर में अर्चनार्थ जाती है तब रत्नसेन उसके अगाध सौन्दर्य को देखकर आकर्षित हो जाता है। पार्वती के, अप्सरा के स्वरूप पर रत्नसेन जरा मुग्ध नहीं होता यहाँ तक कि आंख उठा कर देखता तक भी नहीं। कवि ने वहाँ कहलवाया है—

भलेहि रङ्ग अछरी तोरा राता। मोहि दूसरे सौं भाव न भाता॥

इससे प्रतीत होता है कि रत्नसेन रूप का लोभी भवँरा नहीं। क्योंकि प्रेम दूसरा रूप नहीं चाहता। लैला जरा भी खूबसूरत नहीं थीं परन्तु मंजनू उस पर ही मरता था। रत्नसेन का प्रेम भी इसी प्रकार विशिष्ट और एकनिष्ठ दिखाया गया है। कवि ने जहाँ तोते के मुँह से रूप-वर्णन सुनकर रत्नसेन के प्रेम का प्रबल और अदम्य रूप दिखाया है वह किसी सीमा तक प्राकृतिक व्यवहार की दृष्टि से उपयुक्त नहीं दिखाई पड़ता।

रत्नसेन और अलाउद्दीन दोनों के प्रेम में भी कवि ने बड़ा अन्तर दिखाया है। रत्नसेन का प्रेम अनन्य अगाध है। अलाउद्दीन का प्रेम लोभी और लम्पट का प्रेम है। क्योंकि अलाउद्दीन के विपक्ष में दो बातों पर अनौचित्य दिखाई पड़ता है—(१) पद्मावती का दूसरे की विवाहिता स्त्री होना तथा दूसरा अलाउद्दीन का उसके प्रति उग्र प्रयत्न करना, छल और तलवार के बल पर उसे अपने रनिवास लाने का प्रयत्न करना है। इसके अतिरिक्त तत्काल रूप वर्णन सुनकर प्रेम के कारण आतुर होना और मूर्छित होना भी संगत नहीं जान पड़ता।

इसके पश्चात् नागमती के विरह को लिया जाता है जो पूर्वार्द्ध में है। यही नागमती का विरह वर्णन जायसी की कीर्ति का उज्ज्वल स्तम्भ है। है। जहाँ पर कवि ने पद्मावती का नव-प्रस्फुठित्त प्रेम दिखाया है उसके

साथ ही नागमती के गार्हस्थ्य-परिपुष्ट प्रेम की भी सुन्दर व्यंजना की है। नागमती का स्वरूप भारतीय आदर्श स्वरूप पतिप्राणा हिन्दू पत्नी के रूप में दिखाया गया है। पद्मावती के विवाह से पहले नागमती रूपगर्विता तथा प्रेम-गर्विता के रूप में दिखाई जाती है, परन्तु पश्चात् जायसी ने उसके परम उज्ज्वल और सात्विक स्वरूप को प्रोषितपतिका के रूप में दिखाया है। उसका रूप गर्व और प्रेम गर्व विरह की अग्नि में तप कर नितान्त स्वच्छ और निर्मल कंचन के समान होजाता है। कवि का मन नागमती के अश्रुमय स्वरूप पर खूब रीझा है। यही कारण है कि जहाँ तक भी हो सका है, कवि ने नागमती के के प्रेममय रूप को पुष्ट और परिपक्व करने का प्रयत्न किया है।

नागमती के विरह ताप की व्यंजना में कवि ने कई स्थलों को ऊहात्मक पद्धति में दिखाया है। नागमती का विरह इतना तीव्र है कि—

जेहि पंखी के नियर होइ कहै विरह की बात।
सोई पंखी जाइ जरि तरिवर होई निपात॥

हृदय ताप से नागमती को ऐसा जान पड़ता है—

जानहूँ अगिनि के उठहिं पहारा। औ सब लागहि अंग अंगारा।

अथवा

जरत बजागिनि करु, पिउ, छाहाँ। आइ बुझाउ अंगारन्ह माहाँ।
लागिउं जरै, जरै जस बारू। फिर फिर भूजेसि, तजिउँ न बारू॥

पहले वाक्य में बाह्यताप का वर्णन है और दूसरे में हृदय-ताप की अनुभूति है। प्रेम-जन्य सन्ताप के अतिरेक में नागमती का मन भाड़ में भूने जाने वाले अनाज के दाने के समान बार बार हट हट कर उधर ही फिर प्रवृत होता है।

ताप के अतिरेक के द्वारा विरह की व्यंजना में ऊहात्मक पद्धति के अतिरिक्त जायसी ने विरह के अन्य अंगों का विकास भी दिखाया है। विरह का नागमती के शरीर पर प्रभाव तथा वाह्य प्रकृति पर प्रभाव। रत्नसेन के

अभाव से उत्पन्न विरह के कारण नागमती का शरीर सूख कर काँटा हो गया है। किसी भी नस में रक्त का संचार नहीं रहा।

देहि जरि कोइला भई कंत सनेहा। तोला माँसु, रहा नहि देहा।
रकत न रहा, विरह तन जरा। रती रती होइ नैनन्ह ढरा॥

अथवा

हाड़ भये सब किंगरी नसैं भईं सब ताँति।
रोउँ रोउँ ते धुनि उठै कहों विथा केहि भाँति॥

कहीं कहीं जायसी ने नागमती के प्रेम में उन्माद की व्यंजना की है। नागमती उपवनों में रोती फिरती है। उसके विलाप से खग, मृग, पक्षी भी व्याकुल हो जाते हैं। वह दुःखी हुई पशु-पक्षियों को सम्बोधन कर रत्नसेन के विषय में पूछती फिरती है—सच है कामी व्यक्तियों को जड़ चेतन की सुध कहाँ रहती। कालिदास ने भी इसी बात की पुष्टि इन शब्दों में की है—

"कामार्त्ता हि प्रकृति कृपणाश्चेतना चेतनेषु।"

राम सीता के विरह में पूछते फिरते हैं—"हे खग, मृग, हे मधुकर श्रेनी! तुम देखी सीता मृग नैनी।"

पशु-पक्षी भी विरह से द्रवीभूत होकर नागमती से उसके विलाप का कारण पूछते हैं—

फिरि फिर रोव कोइ नहि डोला। आधी रात विहंगम बोला।
तू फिरि फिरि दाहै सब पाँखी। केहि दुख रैनि न लावसि आँखी॥

कथानक की दृष्टि से जायसी की दोनों कथाएँ पुष्ट और परिमार्जित हैं। यह बात जायसी के लिये श्रेय की है। हिन्दी साहित्य की अधिकांश कथायें विशृङ्खल हैं परन्तु जायसी के पद्मावत् के पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध दोनों ही पंचसंधियों के आधार पर पूरे उतरते हैं। इस सौष्ठव के कारण कथा में और भी चमत्कार आ गया है। कल्पना का रंग चढ़ा कर कवि ने उसे और

संगठित, रोचक तथा व्यवस्थित कर दिया है। यद्यपि कल्पना और इतिहास का मेल साहित्य या काव्य की दृष्टि से उचित नहीं है फिर इतिवृत्त में कल्पना का संयोग रसात्मक और सरस सिद्ध हुआ है। यद्यपि कथा में दोनों वृत्तों के मेल से किसी प्रकार की बाधा उपस्थित नहीं होती फिर भी यदि दोनों कथाओं का केन्द्र एक ही हो जाता तो कवि की अधिक प्रतिभा का परिचय मिलता क्योंकि पूर्वार्द्ध में राघवचेतन और अलाउद्दीन का कुछ पता नहीं चलता। इनका परिचय उत्तरार्द्ध में ही मिलता है। इसको देख-कर यह भी कहा जा सकता है कि सम्भवतः जायसी ने दोनों कथाओं को एक बार नहीं लिखा जिससे उसमें कुछ अनौचित्य का समावेश हो गया है। नागमती का विरह वर्णन और नखशिख वर्णन सर्वथा दो स्वतन्त्र रचनाएँ दिखाई देती हैं। परन्तु ये दोनों कथानक लोकप्रियता की दृष्टि से बहुत सुन्दर हैं। सारी कथा पर पूर्णतया दृष्टिपात करते हुए यह तो निस्सन्देह कहा जा सकता है कि इतिवृत्ति और कल्पना के सुन्दर संयोग पर जायसी का पदमावत जीवित हो उठा है। इसमें इन दोनों का मणि काञ्चन संयोग है। एक के बिना दूसरी नीरस और दूसरी के बिना पहली अधूरी है। जायसी की यह अपूर्व सूझ है जिससे इनके पद्मावत को रामचरितमानस के पश्चात् दूसरा स्थान दिया जाता है। चाहे महाकाव्य की दृष्टि से यह कथानक कैसा भी हो फिर भी प्रेम-कथानक की दृष्टि से यह सहृदय जनों के हृदय का हार है।

प्रश्न ९—सिद्ध कीजिए कि जायसी के पद्मावत में भावपक्ष और कलापक्ष का सुन्दर समन्वय हुआ है।

उत्तर—कवि जायसी ने 'पद्मावत' का प्रणयन करने के लिए अपनी तूलिका से जो चित्र अङ्कित किये हैं वह हमारे साहित्य की निधि को अलं-कृत करते हुए दिखाई देते हैं। काव्य कला के विमल स्वरूप की झाँकी इसमें मिलती है। यद्यपि कथा-भवन का निर्माण इतिहास और कल्पना के मणि-

काञ्चन संयोग से हुआ है फिर काव्य-प्रतिभा ने उसको नवीनतम रूप दे दिया है। एक ऐतिहासिक कथा को उन्होंने एक ऐसा रूप दिया है जो काव्य कला की दृष्टि से तथा कल्पना के सहयोग से भव्य बन गया है। भाषा और भाव के स्पष्टीकरण में कथा के संगठन में, विरह व्यथा से द्रवीभूत करने में, मानवीय भावनाओं का उद्घाटन करने में तथा प्रकृति के वर्णन में जायसी का पद्मावत एक अद्वितीय ग्रन्थ है। भक्ति के रस से प्लावित और विरह के अश्रुओं से सिक्त है।काव्य मर्मज्ञ, रसिक, तथा सहृदयों के कंठ का हार है। स्थान-स्थान पर पद-लालित्य, रचना चातुर्य और भावावेश है। हार्दिक सौन्दर्य का सच्चा स्वरूप, पात्रों का स्वभाव वर्णन मुसलमानी सिद्धान्तों का प्रतिपादन बड़े सुन्दर ढंग से हुआ था। भारतीयता का उत्कृष्ट आदर्श है तथा रहस्यवाद की धारा को अधिक स्वच्छ और पवित्र रूप में बहाया गया है। प्रवन्ध पटुता की दृष्टि से 'पद्मावत' सुसंगठित और व्यवस्थित ग्रन्थ है। आरम्भ में मंगलाचरण के रूप में लम्बी चौड़ी वन्दना की गई है तदनन्तर कथा का आरम्भ होता है। 'पद्मावत' का मूलाधार ऐतिहासिक है। परन्तु जायसी ने कथावृत्त को विस्तार नहीं दिया। उन्होंने मसनवियों के अनुरूप इस विशेष कथा को साधनमात्र वनाया है। लौकिक पक्ष को अलौकिक रूप देने की प्रवृत्ति से प्रभावित है। जायसी के पद्मावत की कहानी खण्डों में बँटी हुई है। कई खण्ड कहानी की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण नहीं हैं और कई खंड बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। कथा का विस्तार ५७ खण्डों तक चलता है। इनका उत्तरार्द्ध ऐतिहासिक और पूर्वार्द्ध काल्पनिक है। ऐतिहासिकता के आधार पर कथा वस्तु के तीन केन्द्र हैं—नागमती, पद्मावती और अलाउद्दीन। नागमती चित्तौड़ के राजा रत्नसिंह की विवाहिता है। पद्मावती पहले रत्नसेन की प्रेयसी फिर विवाहिता है। अलाउद्दीन पद्मावती का प्रेमी है परन्तु उसका प्रेम वासनात्मक है। वह प्रेम के उचित मार्ग को न पकड़कर तलवार और छल के मार्ग को पकड़ता है।

सिंघल, चित्तौड़ और दिल्ली तीनों ऐतिहासिक स्थान हैं। कवि ने जायस नगर को सिंघल द्वीप के रूप में चित्रित किया है। चित्तौड़ से लेकर रत्नसिंह सिंघल द्वीप तक की यात्रा करता है। जब लौट कर आता है तो बङ्गाल की

खाड़ी की तरफ से आता है। ऐतिहासिकता का तत्व इसमें यही है कि १३०३ ई० में अलाउद्दीन खिलजी ने चित्तौड़ पर घेरा डाला और उस पर अपना अधिकार जमा लिया। लक्ष्मणसिंह कुछ सैनिकों के साथ दक्षिण चले जाते हैं और पदमावत रनिवास में जौहर व्रत का पालन कर लेती है। ऐतिहासिक तथ्य केवल इतना ही है। यह पद्मावत की उत्तर कथा है जिसमें जायसी ने अपनी तरफ से कुछ चीजों को जोड़ दिया है। पदमावत की पूर्व कथा एक दम अनिश्चित है। जिसमें केवल कल्पना का ही सहयोग प्राप्त हुआ है। इतनी कोई भी कल्पना नहीं कर सकता कि चित्तौड़ का कोई राजा सिंहलद्वीप तक केवल सौन्दर्य वर्णन सुनकर ही दौड़ पड़ेगा। इस काल्पनिक भाग का पद्मावती और अलाउद्दीन से कोई सम्बन्ध नहीं। भारतीय इतिहास में अलाउद्दीन की लड़ाई लक्ष्मणसिंह से मानी गई है रत्नसेन से नहीं परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि रणजीतसिंह के सेनापति रत्नसिंह से जायसी को प्रेरणा मिली है। पूर्वार्द्ध में नागमती का संस्करण वीसलदेव रासो की राजमती से हुआ लगता है। नागमती के सम्बन्ध में कोई भी ऐतिहासिक आधार नहीं, कहीं पर भी वह पद्मावती की सौत बनकर नहीं आई है। परन्तु यह बात निस्सन्देह कही जा सकती है कि यदि जायसी ने एक उत्कृष्ट विरह-वर्णन करने के लिए नागमती की कल्पना की है तो उनको इसका श्रेय मिलना ही चाहिए।

कथा संगठन की दृष्टि से दोनों कथाएँ अधिकाँश विश्रृङ्खल होती हैं। परन्तु जायसी ने 'पद्मावत' की कथा को इतना सुव्यवस्थित रखा है कि दोनों भागों में पाँचों सन्धियाँ पूरी उतरती हैं। इसी सौष्ठव के कारण कथा में रोचकता अधिक आ गई है। प्रायः मसनवी काव्यों में घटनाएँ और कहानियाँ पुष्ट होती हैं हैं। इसका कारण यह है कि वे कथाएँ लोक-प्रसिद्ध होती हैं और युग-युगान्तर से चलती आने के कारण अपने में पुष्ट हो चुकती हैं। कवि अपने काव्यलोक में लाकर उन्हें और भी सुन्दर और परिमार्जित बना देता है। कथा संगठन में एक अभाव अखरता है। वह यह है कि जायसी ने ऐतिहासिक और काल्पनिक कथा को लाकर एक केन्द्र पर स्थापित नहीं किया। दोनों कथाएँ स्वतन्त्र सी जान पड़ती हैं। यदि वे ऐसा कर लेते तो काल की दृष्टि से कथानक में अधिक सौष्ठव आ जाता। ऐसा प्रतीत होता है

कि जायसी ने पूरी कथा को एक बार में ही नहीं लिखा जिससे कहीं-कहीं विशृङ्खलता आ गई है। नागमती का विरह वर्णन, नखशिख वर्णन, सिंघल-द्वीप, खंड षटऋतु-वर्णन, स्त्री भेद खंड तथा बादशाह खोज खंड सर्वथा निरर्थक और कथावस्तु को बलात् बढ़ा रहे हैं। यह खण्ड प्रक्षिप्त है इनके निकल जाने से कथा-वस्तु में कोई बाधा उपस्थित नहीं होती। ऐसा प्रतीत होता है कि जायसी स्वभाव से सनकी थे जो वर्णन करते गये तो करते ही गये हैं। सारा वर्णन निरर्थक और काव्य की दृष्टि से इतना उत्कृष्ट नहीं।

पद्मावत के कथा-संगठन में प्रकृति ने बहुत सहयोग दिया है। सूफी साधु प्रकृति में आध्यात्मिक अंश देखते हैं। अतः प्रकृति का सुन्दर सहयोग उन्हें बहुत प्रिय है। यही कारण है कि प्रायः भारतीय साहित्य में प्रकृति वर्णन की कहीं भी उपेक्षा नहीं हुई। जायसी के प्रकृति वर्णन का ढङ्ग मसनवी शैली के आधार पर नहीं क्योंकि इसके समान नाम परिगणनात्मक शैली को कहीं भी उत्कृष्ट नहीं समझा गया। कहीं-कहीं यह शैली इतनी दूर तक चली गई है कि पाठक की उत्सुकता और प्रेरणा में बाधक हो जाती है—

"खिरनी पाकि खाँड़े असि मीठी। जामुन पाकि भंवर अस दीठी॥
पुनि महुआ चुअ अधिक मिठासू। मधुजस मीठ पुहुप जस बासू॥

लवंग सुपारी जायफल सब फरफरे अनूप।
आस पास बहु इमली औ घर तार खजूर॥"

जायसी एक बाग का वर्णन करते हुए लिखते हैं—

नारंग नीबू सुरंग जमीरा। औ बदाम बहु भेद अंजीरा॥
गलगल तुरंज सदा फर-फरे। नारंग अति राते रस भरे॥
किस-मिस सेब फरै नौ पाता। दारिऊँ दाख देखि मन राता॥
फरे तूत कमरग औ न्यौजी। राय करौंदा बेर चिरौंजी॥
संतरा व छुआरा दीठे। और खजहजा खाटे मीठे॥

जायसी के काव्य की सबसे बड़ी दुर्बलता यही है।

परन्तु हम यह नहीं कह सकते कि केवल वस्तु ज्ञान के आधार पर ही कवि ने अपना काव्य-भवन खड़ा किया है। उन्होंने कल्पना से प्राकृतिक तत्वों में परिवर्द्धन भी किया है। इस प्रकार चमत्कारपूर्ण वर्णन जायसी के काव्य की विशेषता हैं कवि ने कई स्थानों पर अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन करके अत्यधिक ऐश्वर्य का भी उल्लेख किया है—

ताल तलाब बरनि नहीं जाही। सूझै वार पार किछु नाहीं।

फूले कुमुद सेत उजियारे। मानहुँ उए गगन महँ तारे।

उतरहिं मेघ चढ़ेहिं लेह पानी। चमकहिं मच्छ बीजुकै बानी।

इस प्रकार जायसी का प्रकृति वर्णन कई प्रकार का है।

१—नामपरिगणनात्मक शैली। (इसमें वस्तु का नाम कथन मात्र ही रहता है)

२—रोमांटिक शैली जिसमें साधारण वस्तु को आसाधारण और अलौकिक बना दिया जाता है।

३—रहस्यात्मक शैली को कवि ने अपने आध्यात्मिक आधार पर खड़ा किया है।

४—उपमान शैली जो कि कहीं मानवीय भावनाओं का वर्णन करती हुई आई है और कहीं नखशिख वर्णन के रूप में, कहीं उपमान उपदेश देते हुए दिखाई देते हैं तो कहीं काव्योंपयोगिता की दृष्टि से आये हैं।

पद्मावत मूलतः प्रेम कथा है अतः शृङ्गार रस के संयोग और वियोग पक्ष का वर्णन इसमें विस्तृत रूप से मिलता है। यद्यपि अन्य रसों का वर्णन भी मिलता है परन्तु वे वर्णन सभी गौण रूप में हैं। ये गौण रस करुण, वात्सल्य, वीर, शांत और वीभत्स हैं। वीर, शांत और वीभत्स का अधिक वर्णन मुख्यतः उत्तरार्द्ध में मिलता है।

संयोग वर्णन का महत्त्व पद्मावत में नागमती और पद्मावती दोनों के लिए हैं। दोनों रत्नसेन की प्रिया हैं। वास्तव में संयोगपक्ष कवियों को उतना

ही प्रिय नहीं है जितना कि वियोगपक्ष ! यही कारण है कि कवि जायसी अपने संयोग पक्ष में अधिक सफल नहीं हो पाये हैं। संयोग पक्ष से जायसी के आध्यात्मिक पक्ष की भी पूर्ति नहीं होती। इन्होंने पद्मावती और रत्नसेन को जीव और ब्रह्म का प्रतीक माना है। साधक के लिए ब्रह्म की प्राप्ति अधिक आनन्दप्रद मानी गई है। जो भी हो, जायसी ने संयोग और वियोग दोनों पक्षों में सुन्दर-सुन्दर चित्र उपस्थित किये हैं। जिस समय रत्नसेन और पद्मावती की सुहागरात की आयोजना होती है तो कदाचित् महल के सातवें खण्ड में होती है।

सम्भवतः यह अन्तिम खण्ड अन्तिम मंजिल पर पहुँच कर प्रिय के मिलन का है। साधना की सूक्ष्मता और मिलन का प्रतीक मिलन शैया है :—

अति सुकुवाँर सेज सो दासी, छुवैं न पावे कोइ।
देखत नवैं खिनहिंखिन पाँव परत कस होइ॥

भारतीय धर्म साधकों ने 'काम' को भी धर्म और मोक्ष का साधक माना है। इस दृष्टि से स्थूल-मिलन-चित्र इन्होंने उपस्थित किया है :—

करि सिंगार तापर का जाऊँ। ओही देखहुँ ठाँवहि ठाऊँ॥
जो जिउ में तौ उहै पियारा। तन मन सौ नहिं होई निनारा।
नैन माँह है उहै समाना। देखौं तहाँ नाँहि कोउ आना॥

यही आध्यात्मिक पक्ष है जिसमें 'सियाराममय' की स्थिति को कवि प्राप्त हो गया है।

संयोग के अतिरिक्त वियोग श्रृङ्गार का चित्रण पद्मावत में बड़े विशद रूप से मिलता है। नागमती और पद्मावती दोनों के विरह-चित्रण पद्मावत में हमें मिलते हैं। नागमती के वियोग और सन्देश की चीज अनन्य है जो सारे हिन्दी साहित्य में नही मिल सकती। इसी के लिये जायसी अमर होगये हैं। एक-एक पद महाविरह का अगाध समुद्र है। नागमती कहती हैं—

जिन्ह घर कन्ता ते सुखी, तिन्ह गारौ ओ गर्व
कन्त पियारा बाहिरै, हम सुख भूला सर्व ।।
परवत समुद्र अगमबिच वीहड़ बन वन ढाख।
किमि कै भेंटों कन्त तुम्ह, ना मोहि पाँव न पाँख ।।

नागमती का विरह वर्णन चाहे ऊहात्मक हो, भले आधुनिक मनोवैज्ञानिक दृष्टि से पूरा न उतरे, परन्तु उसकी उक्तियाँ ऐसी हैं जो नाविक के तीर की भांति चुभती हैं। कोई पक्षी नागमती की बात किस प्रकार रत्नसेन के पास ले जाये क्योंकि—

जेहि पंछी के नियर होइ कहै विरह कै बात।
सोई पंछी जाइ जरि तरिवर होई निपात ।।

नागमती की विरह व्यथा से द्रवीभूत प्रकृति भी दुःखी है—

नहीं पावस ओहि देसरा नहि हेवन्त बसन्त।
न कोकिल न पपीहरा जेहि सुनि आवै कन्त ।।

अन्त में नागमती को रोते-कलपते देखकर एक पक्षी पूछ बैठता है—

फिर-फिर रोव कोइ नहीं डोला, आधी रात विहंगम बोला।
तू फिर फिर दाहै सब पाँखी केहि दुख रैन न लावसि आँखी ।।

इस प्रकार जायसी ने नागमती के विरह की तीव्रता का प्रभाव जड़, जंगम, पशु-पक्षी तक भी बताया है। इस दृष्टि से जायसी की टक्कर में अन्य कोई नहीं ठहरता। राम भी जब सीता के विरह में व्याकुल पक्षियों से कहते हैं—"हे खग ! मृग हे मधुकर श्रेनी तुम देखी सीता मृगनैनी" तो कोई उत्तर नहीं देता, पर यहाँ नागमती का विरह अति तीव्र है—उसका शरीर कृश हो चुका है। नसों में एक बूँद रक्त नहीं रहा।

हाड़ भये सब किङ्करी नसें भई सब ताँति।

\+ + +

रक्त न रहा विरह तन-जरा। रती रती होइ नैन्हहिं ढरा।

स्पष्ट है कि प्रियतम की याद में नागमती ने स्वयं को विलीन कर दिया। वात्सल्य का वर्णन मुख्यतः गोरा-बादल के प्रसङ्ग में आता है। युद्ध में जाते समय बादल की माँ उसके लिए चिन्ता करती है। शृङ्गार के बाद करुणा ही एक ऐसा रस है जिसमें जायसी की बहुत आसक्ति रही है। अधिकतर विप्रलम्भ शृङ्गार में ही इसका निरूपण हो जाता है। अधिक करुणा-जनक दो दृश्य हैं। १—जब रत्नसेन चित्तौड़ से विदा होता है और दूसरा जब पद्मावती सिंघल से विदा लेती है—पद्मावती की विदाई का चित्र देखिये—

रोवहिं मातु-पितु औ भाई। कोउ न टेक जो कन्त पलाई।

× × ×

कन्चन कथा सो रानी रहा न तोला माँसु।
कंत कसौटी घालि कै चूरा गढ़े कि हाँसु॥

शान्त रस की उक्तियों का वर्णन स्थान-स्थान पर है। वीर रस के प्रसंगों में कुछ पंक्तियाँ वीभत्स की भी आ गई है।

पद्मावत में वस्तु वर्णन का बहुत आधिक्य है। जायसी ऐसे वर्णन का का प्राकृतिक दृश्यों के अन्तर्गत तथा सामान्य वर्णन. के अन्तर्गत अपने बहुज्ञान तथा तीव्र पर्यवेक्षण शक्ति का परिचय देते हैं। उन्होंने सिंहलद्वीप के गढ़ों का, चित्तौड़गढ़ और नगर का विशद वर्णन किया है। हाटों में अनेक प्रकार की सामग्री भरी पड़ी है। अनेक प्रकार के साधु सन्यासी मठों और मंडपों में बैठे हैं। पनिहारिनों का वर्णन करता हुआ कवि थकता ही नहीं। समाज के अनेक प्रकार के वर्णनों से कवि का निकट सम्बन्ध है। कवि वेश्या, मालिन, पंडित, चिरहटों, पाखंडियों, कलाविशारदों, ठगों, व्यापारियों आदि का उल्लेख करता हुआ आगे बढ़ता है। कवि का ज्ञान क्षेत्र नगर की नीचे तक की जनता तक सीमित है राजदरबार तक उसकी पहुँच नहीं। ऐसे वर्णन साहित्यिक दृष्टि से अच्छे नहीं समझे जाते। कहीं कवि हाथियों की किस्मों की लम्बी सूची तैयार करता है तो कहीं घोड़ों के प्रति अपने अगाध ज्ञान का उल्लेख

करता है। इसी प्रकार वेश्याओं के मनोविज्ञान और उनके हावभाव को बड़े सजीव ढंग से उतारा है।

मुख तमोल, तन चीर कुसुंभी। कानन रुनक जड़ाऊ खम्भी ॥
भौंह धनुष, तिन्ह नैन अहेरी। मारहिं बान सान सौं फेरी ॥
अलक कपोल डोल हँसि हेहीं। लाइ कटाक्ष मारि जिउ लेहीं ॥

ऐसे वर्णन साहित्य में बहुत कम हैं जिसमें इसका परिपाक भी नहीं।

युद्ध वर्णन भी जायसी का बड़े विशद रूप में है। परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि युद्ध को उन्होंने अपनी आँखों से नहीं देखा। युद्ध के सभी लेख पद्मावत की कथा के उत्तरार्द्ध में हैं। अधिकाँश युद्ध वर्णन काल्पनिक हैं और उत्प्रेक्षा का व्यापक प्रयोग है। अस्त्र-शस्त्रों का वर्णन करते समय कवि ने अतिशयोक्तियों की झड़ी लगा दी है।

चली कमानैं जिल्ह मुख गोला। आवहि चली धरिन सब डोला।
लागे चक्र बज्र के गढ़े। चमकहिं रथ सोने सब मढ़े ॥

कुछ स्थानों पर कवि ने केवल नाम कथन ही कर दिया है। ऐसा प्रतीत होता है कि नामोल्लेख करने में कवि की बहुत रुचि है। इसी परिगणन शैली ने कवि की कविता को दुर्बल बना दिया है। कही पकवानों की गिनती, कही घोड़ों और हाथियों की और कही फूलों पौधों और वृक्षों फलों की। साहित्य जगत में ऐसा वर्णन निकृष्ट माना गया है। क्योंकि इससे काव्य प्रवाह में बाधा उपस्थित होती है और कवि की प्रतिभा पर आघात पहुँचता है। रत्नसेन के भोज के समय कवि लोक प्रसिद्ध सभी भोज्य पदार्थों का वर्णन कर जाता है तथा इनकी ऐतिहासिक और मनोवैज्ञानिक खोजों का भी उल्लेख करता है।

रोमांटिक वर्णन जिसमें कवि अतिशयोक्ति और कल्पना का प्रयोग करता है उनमें रनिवास, महल और राजद्वारों का भी वर्णन है—

साजा राजमन्दिर कैलासू। सोने कर सब धरति अकासू ॥
सात खण्ड धौराहर साजा। उहै संवारि सकै अस राजा ॥

हीरा ईंट कपूर गिलावा। औ नग लाइ सरग लेइ लावा॥
लाग खम्भ मणि-माणिक जरे। निसदिन रहहि दीप जनु बरे॥
देखि धौराहर कर उजियारा। छपि गये चाँद सूरज औ तारा॥

कवि ने सामाजिक कृत्यों का वर्णन भी पद्मावत में किया है जिसमें विवाह, भोज जौहर आदि के विशद् वर्णन मिलते हैं।

ये सब हिन्दू समाज के कृत्य हैं और इनसे कवि के विशाल ज्ञान भंडार और उसकी सहानुभूति का पता चलता है। कवि ने जो कुछ सामाजिक कृत्यों के विषय में जाना है, वह राजमहलों के वातावरण से नहीं जाना। वह उसने साधारण हिन्दू गृहस्थों से जाना है। जायसी की पहुँच समाज के ऊँचे वर्ग तक कम थी। यही कारण है कि उनकी रुचि भी विशेष परिमार्जित नहीं। परन्तु इससे यह तो कहना पड़ेगा कि जायसी लोक काव्य नहीं लिख रहे थे। उन्होंने जितना भी वर्णन इधर-उधर का किया उसमें उनका एक मात्र उद्देश्य पद्मावती और रत्नसेन के रूपक को प्रतिष्ठित करना है। उन्हें सांकेतिक शब्दों के द्वारा आध्यात्मिक अर्थों की पूर्ति करनी है—

चाँद के दीन्ह जयमाला। चाँद आगि सूरज गिए धाला॥
सूरज लीन्ह चाँद परिराई। हार नखत तरइन्ह स्यों पाई॥

कवि जायसी के भावपक्ष के साथ ही साथ कलापक्ष भी वैसा पुष्ट, परिमार्जित और प्राँजल है। सभी सूफी कवियों की भाषा ठेठ अवधी है। यद्यपि समष्टिगत द्रष्टि से हम सभी कवियों की भाषा को इतनी परिमार्जित नहीं कह सकते परन्तु जायसी का व्यक्तिगत रूप से कलापक्ष सुन्दर है। जायसी की भाषा को समझने के लिए आवश्यक है कि अवधी की मुख्य-मुख्य विशेषताओं को समझा जाये। जायसी की अवधी शुद्ध और मुहावरेदार है। इनकी भाषा में पद और दोहे अधिक मिलते हैं। इन्होंने संस्कृत के सुन्दर पदों के बिना भी ठेट अवधी का स्वरूप दिखाया है। भाषा की इतनी विशेषताओं के साथ ही उसमें कई दोष भी आ गये। जैसे पुनरुक्ति का दोष 'पद्मावत' में जहाँ-तहाँ मिलता है। एक ही भाव, एक ही वाक्य और एक ही अलङ्कार पद्मावत में

कई स्थानों पर मिलता है। जैसे सूखे सरोवर के फटने का वर्णन तथा पद्मावती का नख-शिख वर्णन कई स्थानों पर किया गया है। कई स्थानों पर जायसी ने अनावश्यक प्रसङ्गों को लाकर भी कथा के विस्तार को आगे बढ़ाया है। ऐसे वर्णन अधिकतर वस्तु वर्णन में ही मिलते हैं। कई स्थानों पर अनपेक्षित आभरणों का वर्णन है और कई स्थानों पर पौधों, फूलों, वृक्षों तथा बागों का वर्णन इतना अधिक है कि पाठक को उसमें अरुचि होने लगती है। कहीं पर कवि ने कामशास्त्र के नियमों, उपनियमों का वर्णन इस प्रकार किया है कि वह काव्य न होकर शास्त्र ही बन गया है। रत्नसेन के विवाह के समय विविध व्यंजनों की लम्बी सूची तथा घोड़ों और हाथियों की किस्मों को इस प्रकार दिया है मानो जायसी का उद्देश्य उन सबसे पाठक का परिचय कराना ही हो। आखिरकार जायसी महाकाव्य के रचयिता थे। अतः ऐसा वर्णन उन्हें शोभा नहीं देता। इसके अतिरिक्त भाषा में कहीं-कहीं न्यूनपदत्व, अधिक पदत्व, च्युत संस्कृति तथा ग्राम्यत्व आदि दोष आ गये हैं।

इतना होने पर भी जायसी का यह चरित काव्य इतनी प्रसिद्धि पा गया है कि वीसलदेव रासो, हम्मीर रासो, पृथ्वीराज रासो इतनी प्रसिद्धि को प्राप्त नहीं हुए। इसका विशेष कारण यही कहा जा सकता है कि इसमें प्रेमतत्त्व का अन्यतम निरूपण है। प्रेम के विभिन्न रूपों का सुन्दर और मुग्धकारी निरूपण जायसी के पद्मावत के अतिरिक्त हिन्दी साहित्य के अन्य काव्यों में नहीं मिलता। पद्मावत में कवि ने महाकाव्य की सीमा के भीतर रह कर भी मनुष्य की सुख दुःखमयी प्रवृत्तियों का ऐसा चित्रण किया है कि मानव हृदय अनायास ही उस रस में सराबोर हो जाता है। कवि का काव्य स्वतः ही प्रेमतत्त्व का स्वरूप है। केशव की रामचन्द्रिका का आदर काव्य-प्रेमियों में रहा परन्तु जो आदर पद्मावत का है वह रामचरितमानस को छोड़कर भक्ति की दृष्टि से किसी अन्य का नहीं। अतः यह कहने में अत्युक्ति नहीं होगी कि अवधी भाषा के दो ही चरित काव्य हैं—रामचरितमानस और पद्मावत।

प्रश्न १०—जायसी की भाषा-शैली पर एक लेख लिखिए।

उत्तर—अवधी भाषा को सुश्रृंखल रूप देकर उसी के अनुसार प्रयोग साम्य करने का श्रेय कविवर जायसी को है। काव्य की श्रेष्ठता की जाँच करने के लिये इतना ही जानना पर्याप्त नहीं कि उसमें विभाव, अनुभाव, संचारी भावों को परिपुष्टि मिली है या नहीं वरन् यह भी जानना आवश्यक है कि काव्य की भाषा कहाँ तक भावों का अनुगमन करती है। क्योंकि यथार्थ में काव्य की भाषा का उद्देश्य भाव को मूर्तिमान करने का है। अतः भाषा का भावानुगामिनी होना आवश्यक है। यदि भाव कविता का प्राण है तो भाषा कविता का शरीर। सच्चा कवि सदैव भावावेश में लिखता है। अतः उच्चकोटि के काव्य में भाषा अवश्य भावों का अनुसरण करती है। अँग्रेजी महाकवि पोप ने अपने एक निबन्ध (Essays on Criticism) में इसी भाव की पुष्टि की है "It is not enough, no harshness gives offence, the sound must seen an echo to the sense." अर्थात् काव्य की भाषा में यही पर्याप्त नहीं है कि भाषा में कर्ण कटुता न हो, बल्कि यह भी आवश्यक है कि शब्दावली के उच्चारण मात्र में अर्थ ध्वनित हो जाये।

भाषा का शुद्ध और समुचित रूप से नियन्त्रित होना भी आवश्यक है। प्राचीन आचार्यों ने काव्य के तीन गुण माने हैं। साहित्य दर्पणाकार ने लिखा है—"गुणा माधुर्यमोजोऽथं प्रसाद इति ते त्रिधा" इन तीनों गुणों का काव्य में चित्रण अनिवार्य है।

इसमें सन्देह नहीं कि अनुप्रास भी भाषा को सुन्दर बना देता है। अनुप्रास गुण विशेष को स्थिर रख कर रस को सुस्वादु और प्रभावशाली बना देता है। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि अनुप्रास लाने के लिए शब्दों की मन मानी तोड़ मरोड़ की जाये क्योंकि मन मानी तोड़ मरोड़ से भाषा व्याकरण के आधार को छोड़ देता है। व्याकरण हीन और असमर्थ भाषा लिखना अपनी हीनता को प्रगट करना तथा भाषा की स्वाभाविकता को नष्ट करना है। ऐसे अनुप्रास से भाषा शिथिल और सारहीन बन जाती है। अनुप्रास वही प्रशंसपनीय और वांच्छनीय है जो काव्य की भाव राशि में बाधा न डाले। इसके अतिरिक्त श्लेष भी भाषा सौन्दर्य का साधन है। परन्तु श्लेष

केवल ऐसे शब्दों में होना चाहिए जिससे कविता में क्लिष्टत्व दोष न आने पाये। श्लेष के साथ यमक भी भाषा की श्रीवृद्धि में सहायक है। यमक से काव्य में निराली ही छटा आ जाती है।

भाषा में शब्दों का उचित और उपर्युक्त प्रयोग होना चाहिए। शब्दों का चयन यथास्थान और सुन्दर रूप से करना कवि की कुशलता का परिचायक है। अंगरेजी कवि टेनिसन लिखने हैं। "All the charm of all the muses often flowing in the lovely words" अर्थात् "बहुधा कविता के एक ही शब्द में सम्पूर्ण कलाओं का अशेष सौंदर्य उमड़ आता है।"

तात्पर्य यह है कि सामंजस्य पूर्ण साहित्यिक भाषा भावनुगामिनी, सरल और सुसंघटित तथा मंजे हुए शब्दों से युक्त प्रवाहमयी चाहिये। अब जायसी कृत पद्मावत के भाषा-सौष्ठव का निरूपण भाषा के इन्हीं आधारो पर करना असंगत नहीं होगा।

जायसी की भाषा ठेठ अवधी है। ठेठ अवधी कहने का अभिप्राय यह है कि उसमें संस्कृतपन नहीं है। जायसी जनकवि थे। जनकवि कभी जनता की भाषा को छोड़कर विद्वानों की भाषा को नहीं अपनाता। वह भाषा को जानते हुए भी नहीं अपनाता। महावीर ने जानबूझ कर अपना उपदेश अर्द्धमागधी में रखा, बुद्ध ने संस्कृत जानते हुए पाली को अपनाया। इसका कारण यह है कि कवि को साधारण जनता तक अपनी बात पहुँचानी होती है। यदि वह साधारण जन की उपेक्षा करता है तो वह कभी सफल कवि नहीं बन सकता। तुलसी दास ने "नाना-पुराण निगमागम" का अध्ययन किया था फिर भी अवधी को अपने काव्य की भाषा रखा। स्वामी दयानन्द ने संस्कृत को जानते हुए, मातृभाषा गुजराती की अपेक्षा करते हुए हिन्दी में सत्यार्थप्रकाश को लिखा। कहने का अभिप्रायः यह है कि जिस कवि को जनता का अग्रगण्ड बनना होता है वह अवश्य जनता की भाषा को ही अपनाता है। जायसी की भाषां मुख्यतः ठेठ अवधी ही है जैसा कि पहले कहा जा चुका है। इसके साथ ही उसमें अवधी, पूरवी हिन्दी का भी रूप

मिलता है। ब्रजभाषा और खड़ी बोली के रूप भी कई स्थलों पर आ गये हैं। जायसी की भाषा को समझने के लिए अवधी की कुछ मूल बातों की ओर पहले निर्देश किया जाता है जिससे जायसी की भाषा सम्बन्धी विशेषताओं को चुनने में सरलता हो जायेगी।

शुद्ध अवधी की बोलचाल की भाषा का क्रिया का रूप सदा कर्त्ता के पुरुष लिंग और वचन के अनुसार होता है। क्योंकि पूरवी बोलियाँ भूतकालिक कृदन्त रूप नहीं लेती।

ठेठ अवधी की सबसे भारी विशेषता यह है कि खड़ी बोली या ब्रजभाषा में चिह्न सदा क्रिया के साधारण रूप में लगते हैं परन्तु ठेठ अवधी में कारक-चिह्न वर्त्तमान कालिक क्रिया के से रूपों में लगते हैं।

जायसी और तुलसी दोनों में यह नियम विलक्षण मिलता है। वे सकर्मक क्रिया के कर्त्ता का रूप जेइ, तेइ, केइ में और अकर्मक क्रिया के कर्त्ता का को, जो, सो में रूप लेते हैं। जैसे—

राम तें अधिक राम कर दासा

जेहि .... होई

जो ओहि विष मारि के खाई॥

हिन्दी के सम्बन्ध कारक चिह्नों में लिंग भेद होता है, ब्रजभाषा और खड़ी बोली में भी का, की आदि से लिङ्ग भेद का ज्ञान होता है परन्तु अवधी में बोलचाल की भाषा में यह भेद दिखाई नहीं देता। इसमें सम्बन्ध कारक चिह्न 'कर' ही रहता है।

जैसे—सुनि तेहि सन राजा कर नाऊँ। (पुलिङ्ग)

पलुही नागमती कै बारी। (स्त्री लिङ्ग)

वास्तव में अवधी कारक चिह्नों की अव्यवस्था का उत्तरदायी हमारा पुराना साहित्य है। वर्तमान रूप में स्थिर स्थान पर आने से पहले हमारे पुराने साहित्य में कारक चिह्नों में पर्याप्त अव्यवस्था रही जिससे अवधी में भी

ऐसे प्रयोग आ गये । पूरवी अवधी में अब तक अपादान कारक का चिह्न 'से' की जगह 'भैं' माना जाता है । जायसी और तुलसी के काव्य में ऐसे प्रयोग मिलते हैं । जैसे—

१—मीत भैं माँगा बेगि विमानु (से) अपादान ।

२—भरत आइ आगे भए लीन्हे । (से) अपादान ।

जायसी को शिक्षा-दीक्षा का इतना अवसर नहीं मिला कि यह पर्याप्त रूप से पढ़ सकते अतः इनके काव्य में तुलसी से अधिक ग्रामीण शब्दों का प्रयोग मिलता है । यद्यपि वे शब्द साधारण प्रयोग में आने वाले हैं परन्तु साहित्यज्ञ उनको ग्राम्य मानते हैं ।

जायसी ने जितना अधिक ठेठ पूरवी अवधी का प्रयोग किया उतना अधिक तुलसी ने नहीं किया । जायसी की भाषा को देखकर यह तो किसी भी रूप में समझना उचित नहीं होगा, कि जायसी ने सभी जगह लिखते समय व्याकरण का ध्यान रखा हो । खड़ी बोली और ब्रजभाषा दोनों की प्रवृत्ति दीर्घांत पदो की ओर होती है और अवधी की लघ्वंत की ओर जैसे—

ऐसा ऐसो और ऐस

कैसा कैसो और केस

भला भलो और भल

आदि क्रमशः खड़ी बोली, ब्रजभाषा और अवधी के रूप हैं । खड़ी बोली में जो सम्बन्ध कारक सर्वनाम आकारांत होते हैं, वे ब्रजभाषा में ओकारांत और अवधी में अकारांत वन जाते हैं ।

कहीं-कहीं जायसी ने बहुत पुराने शब्दों का प्रयोग किया है जिनका परिचय प्राप्त कर लेना आवश्यक है । जैसे—दिन अर (दिनकर) भूवाल (भूपाल) विव्हर (विषधर) पुहुमी (पृथ्वी) आदि प्राकृत संज्ञाओं के अतिरिक्त अनेक पुराने शब्द भी मिलते हैं जिनका प्रयोग तुलसी और जायसी दोनों ने ही किया है । जैसे—

आग आ जुहिम्ह जूड़

जिन्ह एहि हाट न लीह्न बेसाहा

परसन आइ भए तुम्ह राति

इनके अतिरिक्त ऐसे भी शब्द हैं जिनका व्यवहार ही कहीं दिखाई नहीं देता। जैसे—'चाहि' और 'बाज'।

मेघहु चाहि अधिक बैंकारे (बढ़कर या अपेक्षाकृत)

गगन अन्तरिख राखा, वाज खम्भ बिनु टेक

यह 'बाज' शब्द संस्कृत 'वर्ज्य' का अपभ्रंश है इसका अर्थ यहाँ बैठता है—बिना, बगैर, अतिरिक्त आदि। उसी प्रकार 'पारा' आदि शब्द का प्रयोग भी अपने ही अर्थों में किया है—

परी नाथ कोइ छुवै न पारा (सकना)

मातु न जानसि बालक आदी। हौ बदला सिहराजवादी

(बिल्कुल, निपट)

इस प्रकार जायसी ने अपनी भाषा में अधिकांश शब्द ठेठ अवधी के रखते हुए भी बीच में जो नये-पुराने पूरवी-पश्चिमी हिन्दी के रूप लिखे हैं इससे भाषा अव्यवस्थित लगती है पर यदि उन रूपों का विवेचन कर लिया जाये तो फिर वह अव्यवस्था दिखाई नहीं देती। चाहे कहीं-कहीं व्याकरण विरुद्ध रूप मिल जाते हैं। परन्तु रूप इतने बढ़ेंगे नहीं जिससे वाक्य शिथिल लगें और भाषा उदासीन लगे।

जायसी की भाषा में कहीं-कहीं कहावतें और मुहाविरे भी दिखाई देते हैं। वे सब भाषा के प्रवाह के साथ उसमें आगये हैं। इससे भाषा का प्रवाह अधिक स्वाभाविक हो गया है। उन्हें भाषा के साथ बन्धन रूप से बाँध नहीं दिया।

जैसे— १—जीवन नीर घटे का घाटा। सत्ता के वर जौ नहिं हियफटा

तरिवर तजा जो चूर कै लागै—केहि के डार॥

इसी प्रकार लोकोक्तियों का प्रयोग भी है। जैसे—

१—सूधी अँगुरि न निकसै घीऊ।

२—धरी परा सरग को चाटा।

३—दरब रहै भुइँ दिपे लिलारा आदि।

जायसी की भाषा बोलचाल की और सीधी-साधी है। इसलिये समस्त पदों का प्रयोग उसमें कम मिलता है। जहाँ कहीं भी किया है वहाँ दो से अधिक शब्दों में समास नहीं।

जैसे—लीक-पखान पुरुष कर बोला—

भा भिनसार किरिन-रवि फूटी—

जायसी की भाषा में माधुर्य तो है परन्तु उसमें संस्कृतपन का माधुर्य नहीं, केवल भाषा का माधुर्य है। वह संस्कृत की कोमल कान्त पदावली पर अवलम्बित नहीं। ठेठ ग्राम्यता पर अवलम्बित है। जायसी की भाषा की पहुँच लोकभाषा तक ही है।

जायसी की भाषा में सूक्तियों का यत्र-तत्र प्रयोग किया गया है जो उनके वाक्चातुर्य और उक्तिवैचित्र्य को प्रकट करती है। उक्तियाँ भाव-व्यंजना, वस्तु-वर्णन और तथ्य प्रकाशन के अन्तर्गत आती हैं। भाव-व्यंजना के अन्तर्गत चमत्कार योजना का यह पद सर्वप्रसिद्ध है—

यह तन जारौ छार के कहौ कि "पवन ! उडाय।"
मकु तेहि मारग उड़ि परें कन्त धरें जहं पाँव॥

इन उक्तियों के अन्तर्गत जायसी के उन पदों को लिया जा सकता है जिनमें तथ्य का प्रकाशन हुआ हो। जायसी की इन उक्तियों में चमत्कार के साथ भावुकता भी है—

मुहम्मद बिरिध जों नइ चलै काह चलै भुंइ होइ।
"जेहि पर जेहि पर सत्य सनेहू, सो तेहि मिलत न कछु सन्देहू।"

इस बात को प्रत्यक्ष करने के लिये निम्न सूक्ति कही है—

बसै मीन जल धरती, अबाँ बसै अकास ।
जौ पिरीति पै दुरौ महं अंत होहि एक पास

जायसी की इन उक्तियों में वैलक्षण्य है जो जायसी की भाषा में काव्य-भाव का गुण ला देती हैं ।

जायसी के काव्य में अधिकतर सादृश्य के आधार पर अलंकारों का प्रयोग हुआ है । रसात्मक प्रसंगों में अधिकांश भाव के अनुरूप ही अनुरंजनकारी अप्रस्तुतों की योजना हुई है । जायसी की अलंकार योजना अधिक परम्परागत ही है । परम्परागत कुछ ऐसे भी उपमान मिलते हैं जो प्रसंग के अनुकूल न होने से पुष्ट भी नहीं । जैसे सुन्दरी नायिका के सामने सिंहनी, भिड़ या हाथी की कल्पना करना । ऐसे स्थानों पर फारसी का अनुसरण करते हुए और भी आगे बढ़ गये हैं । भारतीय पद्धति में उपमान चाहे उदासीन हों परन्तु ये भाव के प्रतिकूल नहीं होते । फारसी की शायरी में विप्रलम्भ के अन्तर्गत ऐसे वीभत्स दृश्य उपस्थित होते हैं जैसे भारतीय पद्धति में कहीं नहीं मिलेंगे । कहीं कवि नेत्रों को रक्तवर्ण की उपमा देता है । कहीं शृङ्गार रस में रक्त, माँस, फफोले, हड्डी आदि का वर्णन करता है । जैसे—

"विरह-सारागन्हि भूजै मांसू । ढरि ढरि परहिं रकत के आँसू ।"

हेतूत्प्रेक्षा देखिये—

"हिया काढ़ि जनु लीन्हेसि हाथा, रुहिर भरि अँगुरी तेहि साथा ।"

सादृश्य-विधान में कवि सदैव वृक्षों, पौधों की सहानुभूति, और सच्ची अनुभूतिमय शब्दों को चुनेगा । यदि कवि सच्चा है तो अनुभूति में प्रस्तुत और अप्रस्तुत की योजना ठीक ही होगी ।

सादृश्य मूलक अलंकारों में कवि ने उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक को लिया है । हेतूत्प्रेक्षा बहुत आई है क्योंकि वह कवि को बहुतप्रिय थी । यह अलङ्कार

उत्कर्ष की व्यंजना के लिये बड़ा शक्तिशाली होता है। ललाट का वर्णन करता हुआ कवि लिखता है—

सहस किरिन जो सुरुज दिपाई। देखि लिलार सोउ छवि जाई।

व्यतिरेक अलङ्कार का उदाहरण देखिये—

का सरवरि तेहि देउं मयंकू। चाँद कलंकी, वह निकलंकू॥

औ चाँदहि पुनि राहु गरासा। वह बिनु राहु सदा परगासा॥

रूपकातिशयोक्ति भी जायसी का प्रिय अलङ्कार है। इसके द्वारा कवि रमणीय और सुन्दर प्राकृतिक वस्तुयें सामने रखता है। कवि लाल नेत्रों में घूमती हुई पुतलियों का वर्णन करता है—

"राते कंवल करहि अलि भवाँ। घूमहि याति चहहिं अपसवाँ॥

एक रूपक का उदाहरण देखिये—

कवँल-कालि तू पदमिनी। गइ निसि भएउ विहानु।

अबहुं न संपट खोलसि। जब रे उवा जग भानु॥

कहीं-कहीं जायसी का वर्णन गूढ़ और जटिल अलङ्कारों की योजना करता है। दूती पद्मिनी से आकर कहती है कि जब तक यौवन है तू भोग-विलास करले। कवि ने सांग रूपक योजना की है—

जोवन-जल दिनदिन जस घटा। भंवर छथान, हंस परगटा॥

कवि ने वृद्धावस्था का वर्णन अप्रस्तुत प्रशंसा द्वारा किया है—

छल के जाइहि बान पै, धनुष छाँडिकै हाथ।

यहाँ कारण द्वारा कारण का निर्देश से अप्रस्तुत प्रशंसा है जो रूपकातिशयोक्ति द्वारा सिद्ध हुआ है।

इसके अतिरिक्त विनोक्ति, अर्थान्तरन्यास, विशेषोक्ति तथा विरोध आदि

के उदाहरण इनके पद्मावत में यत्र-तत्र मिलते हैं। अर्थालङ्कारों में यमक, श्लेष और अनुप्रास की छटा सर्वत्र है।

यमक— रसनहिं रस नहिं एकौ भावा।

अनुप्रास— पपीहा पीउ पुकारत पावा।

इस प्रकार यद्यपि कवि ने अवधी भाषा के सौन्दर्य-सौष्ठव और माधुर्य को संस्कृत के सुन्दर पदों की सहायता से दिखाया है फिर भी इनकी भाषा में कई प्रकार के दोष आ गये हैं।

'पद्मावत' में सबसे बड़ा दोष जो भाषा और भाव मे खटकता है वह पुनरुक्ति का दोष है। उसमें एक ही भाव, एक ही उपमा और यहाँ तक कि एक ही वाक्य कई वार आ गये हैं। पद्मावती के रूप सौन्दर्य का वर्णन जहाँ-जहाँ भी किया गया है उसमें अलङ्कारों में, भाषा में और भाव में साम्य होने से पुनरुक्ति का दोष आ गया है। वार-वार सूर्य और चन्द्र का जोड़ा हर एक पन्ने पर आता है।

सूखे सरोवर के फटने का वर्णन भी स्थान-स्थान पर किया है। ऐसी-ऐसी पुनरुक्तियाँ पाठक को विरक्त और उदासीन बना देती हैं। जायसी की शैली वस्तु वर्णन में नाम परिगणनात्मक शैली के लिये अधिक प्रसिद्ध है। कहीं तो जायसी ने वस्तु पदार्थों फलों, पौधों, वृक्षों के नाम ही गिनाकर प्रकृति चित्रण कर डाला है। रत्नसेन के विवाह और बादशाह की दावत के वर्णन के समय पकवानों की लम्बी सूची तैयार करदी है। कहीं पर युद्ध यात्रा के समय घोड़ों की जातियाँ गिनाकर ही पृष्ठ भर डाले हैं। वर्णन का अर्थ गिनती करना तो नहीं होता। इससे इनकी जानकारी का भले ही पाठक को पता चल जाये वह यह नहीं कहेगा कि जायसी कवि थे।

कहीं-कहीं जायसी ने अरोचक और अनपेक्षित प्रसंगों का वर्णन भी जरूरत से अधिक कर दिया है। रत्नसेन और पद्मावती के समागम पर राजा का रसायनी प्रलाप और शतरंज के मौहरों और चालों का बेढंगा वर्णन मिलता है। कहीं-कहीं सौलह श्रृङ्गारों तथा आभूषणों का वे-सिर-पैर का वर्णन मिलता

है। कहीं कामशास्त्र में वर्णित चार प्रकार की स्त्रियों का वर्णन पद्मावत में ले बैठे हैं जो कि काव्य का विषय ही नहीं।

इनके काव्य में कई स्थानों पर न्यूनपदत्व का दोष भी आगया है। कारक चिह्नों, सम्बन्ध वाचक सर्वनामों, विभक्तियों आदि में मात्राओं का लोप हो गया है। कहीं पर अनुचितार्थत्व का दोष आया है। शृङ्गार के प्रसंग में रत्न-सेन को रावण के अर्थ में प्रयुक्त किया है। रावण बड़ा प्रतापी और वीर था पर यहाँ मनोहर नायक के लिए रावण शब्द उपयुक्त नहीं जँचता। यह बात कवि-प्रसिद्ध नहीं। कवि के भाषा शैली सम्बन्धी इतने दोषों को बताकर यह कदापि नहीं कहा जा सकता था कि यह कवि निम्नकोटि का है। जायसी के सम्बन्ध में भी यह कहना एक भोंड़ी और मूर्खता की बात कही जायेगी क्योंकि जहाँ-जहाँ कवि की योग्यता और प्रतिभा चमक उठी है उन स्थलों की ओर भी निर्देश करना उचित होगा।

कवि ने अपनी रोचक शैली द्वारा प्रेम-मार्ग का विस्तृत प्रत्यक्षीकरण किया है। प्रेम पथ में प्रेमी और प्रेयसी के त्याग, कष्ट साधना और विघ्न बाधाओं का वर्णन बड़ा सच्चा और सुन्दर है।

स्थान-स्थान पर भाव व्यंजना बड़ी सुन्दर हुई है। प्रेम-भाव, दर्प और वीर वर्णन, पातिव्रत धर्म का उल्लेख जायसी की भाषा ही कर सकी है जिसमें मानव हृदय की उदात्त और श्रेष्ठ कोमल वृत्तियों की अभिव्यंजना हुई है।

पद्मावत का सा प्रबन्ध सौष्ठव भी अन्यत्र नहीं मिलता। कथा वस्तु का प्रवाह बहुत रोचक है। कहीं पर भी घटनाओं का मोड़ कुतूहल जन्य नहीं। वर्णन की प्रचुरता जायसी की अपनी विशेषता है। विशेषतः सिंहलद्वीप वर्णन, नख-शिख तथा बारहमासा में इन वर्णनों में कवि की विशेष जानकारी और वस्तु परिचय बहुज्ञता आदि का प्रदर्शन होता है। अप्रस्तुत और प्रस्तुत की योजना करने में कवि दक्ष है। अन्योक्तियों और समासोक्तियों का आश्रय इन वर्णनों में लिया गया है।

इस प्रकार कविवर जायसी का भाषा सौष्ठव और भाषा शैली उत्कृष्ट है चाहे उसमें कहीं-कहीं दोष आ गये हैं, परन्तु वर्णन-प्रावल्य पाठक को अधिक मोहित करता है। महाकवि जायसी हिन्दी संसार के उन कतिपय कवियों में से हैं जिनके प्रति पाठकों का विशेष आकर्षण है।

प्रश्न ९—पद्मावत के संयोग शृङ्गार की समीक्षा कीजिए।

उत्तर—कलाविद् कवीश्वरों ने मानसिक जगत् का रहस्य अनेक रूपों में प्रकट किया है तथा उसकी गूढ़ पहेलियों पर भी प्रकाश डाला है। सभी ने मानसिक जगत् की विशेष प्रवृत्तियों में प्रेम को ही प्रधानता दी है। संसार के प्रत्येक अणु में प्रेम की रसमयी स्निग्ध और माधुर्यमयी अविरल धारा को प्रवाहित करना कवीश्वरों का उद्देश्य रहा है। प्रेम के विभिन्न रूपों का बड़ा ही मनोहारी और आकर्षक वर्णन प्रायः प्रत्येक साहित्य के श्रेष्ठतम ग्रन्थों में मिलता है। वास्तव में यूँ कहना चाहिये कि कवि तो स्वयं ही प्रेम की प्रतिमूर्ति और प्रतिविम्व है। प्रेम का क्षेत्र बड़ा व्यापक माना गया है। प्रेम का परिपक्व रूप ही शृङ्गार है। शृङ्गार को प्रत्येक आचार्य ने रसराज माना है। क्योंकि उसकी सीमा के भीतर मनुष्य की सुख दुःखमयी दोनों प्रवृत्तियाँ आ जाती हैं। विप्रलम्भ के अन्तर्गत दुःखात्मक और संयोग के अन्तर्गत सुखात्मक प्रवृतियाँ रहती हैं। इसके अतिरिक्त प्रेम के कई अन्य स्वरूप हैं—प्रणय, वात्सल्य, स्नेह, श्रद्धा, अनुराग आदि। शृङ्गार के अन्तर्गत अधिकतर दाम्पत्य या प्रणय का स्वरूप ही रखा जाता है क्योंकि प्रायः प्रत्येक कवि ने माधुर्य भाव की भक्ति पर अधिक जोर दिया है।

प्रेम के स्वरूप की अनुभूति काव्य की परिधि में लाकर की जाती है। क्योंकि क्रियात्मक जगत् में इसका निर्वाह सामाजिक बन्धनों से दुस्तर हो जाता है। प्रेमी और प्रेमिका के प्रिय-मिलन में अनेक कष्टों को सहन करना पड़ता है। प्रेम का प्रभाव जड़ और चेतन सब पर होता है। इसके रसमय

स्वरूप से पशु-पक्षियों का जगत् भी बड़ा प्रभावित रहा है। इसीलिये प्रेम की व्यापकता और विशालता शृङ्गार को रसराज होने के लिये बाधित करती है। प्रेम के संयोग पक्ष में कवि लोग आलम्बन का रूप-वर्णन, हृदय पर पड़ने वाले प्रभाव को तथा उनके हाव, भाव और चेष्टाओं के वर्णन को लाते हैं। संयोग में कहीं तो प्रेमी और प्रेयसी के मिलन का, कहीं हास्य विनोद, चेष्टाओं और कहीं पर नाना प्रकार की क्रीड़ाओं का वर्णन मिलता है। संयोग में इसके अतिरिक्त मान तथा कष्ट होने आदि का वर्णन मिलता है। कई स्थितियों में खंडिता नायिका की व्यंग्य भरी कटूक्तियाँ सुनने का अवसर मिलता है, तो कभी उत्कंठिता नायिका की उत्कट प्रतीक्षा का आनन्द भोग भी होता है, कहीं पर अनुश्यान नायिका का सांकेतिक स्थान पर विलास भरा मिलन दिखाया जाता है तो कहीं मुग्धा नायिका के प्रेम, हास, संकोच आदि को पाकर नायक धन्य समझा जाता है। इस प्रकार सब प्रकार की अवस्थाओं का चित्रण संयोग में हो जाता है। वास्तव में संयोग रस का क्षेत्र भी उतना ही व्यापक है जितना कि शृङ्गार स्वयं। संयोग में कवि गृहस्थ की तथा विवाह पूर्व की सभी स्थितियों का चित्रण कर सकता है। परकीया और स्वकीया दोनों का प्रेम, विवाह से पूर्व और विवाह के पश्चात् का प्रेम संयोग पक्ष के अन्तर्गत आता है। विवाह पूर्व-संयोग अधिक उच्छृ-ङ्खल और चंचल तथा उद्दण्ड होता है। विवाह के पश्चात् मर्यादा की एक रेखा आदर्श, दाम्पत्य जीवन का संयोग, गम्भीर प्रवाह के समान शान्त और स्थायी होता है। विरह में जितनी तड़पन, वेदना, कसक का निरूपण किया जाता है, संयोग में उतना ही आनन्द, अटखेलियाँ और विनोदभरी क्रीड़ाएँ दिखाई जाती हैं।

नायिका का नखशिख वर्णन भी संयौग शृङ्गार के अन्तर्गत आता है। कवि नायिका के सौंदर्य का मूर्त्त रूप में चित्रण करता है। उसके नेत्र, ओठ, मुख, केश, कुच, कंचुकी आदि का सौंदर्य वर्णन नई-नई कल्पना के आधार पर करता है। कहीं उसके वस्त्रों का वर्णन करता है तो कहीं गति का, कहीं केश-विन्यास का तो कहीं नेत्रों, ओठों और मुख आदि का मूर्त चित्र पाठकों के समक्ष रखता है। परम्परा के अनुसार कवियों ने नथुना, कंकण, तगड़ी,

कुण्डल आदि का भी वर्णन किया है। नखशिख वर्णन के साथ-साथ इसी के अन्तर्गत नायिका भेद भी है। नायिका भेद में भी वर्णन करता हुआ कवि संयोग पक्ष को ही विस्तार देता है। बिहारी और देव जैसे धृष्ट कवियों ने तो विपरीत रति संभोग आदि के वर्णनों को भी बड़ी निर्भीकता से वर्णित किया है। सुरतांत और सुरतारम्भ की स्थिति को दिखाने में भी कवि हिच-किचाये नहीं।

जायसी के शृङ्गार में हमें अधिक महत्वशील और प्रभावोत्पादक वर्णन विरह का ही मिलता है। जायसी के भावुक हृदय ने वियोग की तड़पन और पीड़ा को सहना अधिक उचित समझा। फिर वे भक्त कवि थे, देव और बिहारी की भाँति घोर शृंगारिक नहीं। अतः इनके द्वारा वर्णित संयोग में हम वह नग्न शृङ्गार और अश्लीलता का रूप नहीं देखेंगे जैसा कि रीति-कालीन युग की प्रवृत्तियों में मिलता है। जायसी अनन्य भक्त थे इसलिए इनका शृङ्गार वर्णन भी अधिक स्वच्छ, अधिक संयमित और अधिक सात्विक है। अधिकतर प्रिय मिलन के लिए आत्मा तड़पती ही मिलती है। जहाँ कहीं संयोग का सुख है भी, वहाँ पर भी एक पवित्र आत्मा और परमात्मा का मिलन है। कहीं साधारण नायक और नायिका का नहीं अतः हम कह सकते हैं कि जायसी का संयाग वर्णन भक्तिमय-शृङ्गार था।

जिस प्रकार बारहमासा में कवि ने वियोग वर्णन किया है उसी प्रकार षटऋतु वर्णन में संयोग शृङ्गार को कवि ने लिया है। वास्तव में सूफी कवियों को जितना वियोग शृंगार प्रिय है उतना संयोग शृंगार नहीं, इसी-लिये वे संयोग वर्णन में अधिक सफल नहीं हो पाये हैं। इसका कारण जैसा कि पहिले बताया जा चुका है, यह है कि सूफी कवियों के आध्यात्मिक मन्तव्य की पूर्ति इसके द्वारा नहीं होती है। जीव और ब्रह्म के मिलन को सूफी कवियों ने स्त्री और पुरुष, प्रेमी और प्रेयसी आदि के रूपकों में बाँधा है। महामिलन का आनन्द चाहे ब्रह्म-सहोदर आनन्द है और उसका अस्तित्व हम साधारण तिपत्नि के मिलन से उत्पन्न आनन्द में नहीं मान सकते, फिर भी दोनों के प्रकार और भेदों में साम्य है। जायसी के पद्मावत में रत्नसेन और पद्मावती जीव और ब्रह्म के प्रतीक हैं। इसी से जायसी ने मिलनानन्द का वर्णन विस्तृत

रूप से किया है। खैर, जो भी कुछ हो, जायसी ने संयोग और वियोग दोनों के सुन्दर-सुन्दर चित्र उपस्थित किये है। रत्नसेन की बरात सजकर आती है, पद्मावती के हुलास का वर्णन कवि करता है—

हुलसे नैंन दरस मदमाते। सुलसे अधर रंग रस राते।।
हुलसा वदन ओपरवि पाई। हुलसि हिया कंचुकि नसमाई।।
हुलसे कुच कसनीबन्ध टूटे। हुलसी भुजा, बलम कर फूटे

अंग थंग सब हुलसे, कोइ कतहूँ न समाइ।
ठाँवहि ठाँव विमोही गइ मुरछा तन आइ।।

रत्नसेन और पद्मावती के मिलन पर कवि 'सोहाग रात' का वर्णन करता है। उनके मिलन का आयोजन महल के सातवें खण्ड में माना गया हैं। कदाचित सूफी कवियों की सात खण्डों को पार करके प्रियमिलन की कल्पना आध्यात्मिक पक्ष में की है। जहाँ साधना की सूक्ष्मता और कोमलता का प्रतीक मिलन शैय्या है—

अति सुकुमार सेज सो दासी छुवै पावै न कोइ।
देखत नवै खिनहिंखिन पाँव धरत कस होय।।

विवाह के उपरान्त कवि ने पद्मावती और रत्नसेन के समागम का वर्णन पर्याप्त विस्तार से किया है। ऐसे अवसर पर उपयुक्त विनोद का विधान भी कवि ने किया है। सखियाँ छेड़छाड़ के लिए पद्मावती को कहीं छिपा देती हैं और राजा आतुर होकर मिलना चाहता है। परन्तु इस विधान में जायसी को सफलता नहीं मिली। क्योंकि इसकी प्रवृति में भी अधिक वहुज्ञता प्रदर्शन की है। सखियों के मुख से "धातु कमावै सिखे तै योगी" सुन लेने पर राजा भी धातु वादियों की तरह ही बोलने और बड़बड़ाने लगता है जिससे संयोग की वह रसिकता नष्ट हो जाती है। इससे प्रसंगानुकूलता में भी बाधा उपस्थित होती है। यद्यपि कई स्थानों पर कवि ने इसी प्रकार रस-निष्पत्ति में व्याघात पहुँचाये हैं। फिर भी वर्णन कहीं-कहीं बहुत सुन्दर भी हो गया है।

जैसे—जिस समय पद्मावती सजकर राजा के पास जाती है तो कवि उसका चित्र उपस्थित करता है—

साजन लेइ पठावा आयसु जाइ न मेट।
तन, मन, जोबन साजिकै देइ चली लेइ भेट ॥

यहाँ पर कवि ने मिलन की उत्कृष्ट इच्छा में तन, मन और यौवन तीनों को उत्साह सहित सजते हुए दिखाया है जो कवि की सहृदयता का परिचायक है। प्रायः प्रत्येक कवि अपनी नायिका को अन्यतम सुन्दरी की उपमा देती है। ठीक भी है जो जिसको आकर्षित कर सकी वही उसके लिए अन्यतम सुन्दरी है। जायसी का कथन है कि पद्मावती प्रिय के पास गमन करते समय सृष्टि के समस्त सौन्दर्य को बटोर कर अपने में भर लेती है—अतः उसके सौन्दर्य को देखकर हंस, हाथी, कमल, चन्द्र, विजली सब लज्जित हो जाते हैं—

पदमिनि गवन हंस गये दूरि। कुंजर लाज मेल सिर धूरि।
बदन देखि घटि चन्द समाना। दसन देखि के बीजु लजाना ॥
खंजन छपै देखि के नयना। कोकिल छपी सुनत मधु बैना।
पहुँचहि छपी कंवल-पौनारी। जाँघ छपा कदली होइ बारी ॥

इस प्रकार जायसी पहले सौन्दर्य के साक्षात् दर्शन करा कर फिर उससे उत्पन्न आनन्द का वर्णन करते हैं। फिर उसके पश्चात् प्रेमी मिलन की उत्कट लालसा के लिए सहे कष्टों तथा संकटों का वर्णन कर अपने प्रियतम के हृदय में अपने लिए करुणा और दया के भावों को जाग्रत करता हुआ उसकी सहानुभूति को प्राप्त करता है। इसी उत्कर्ष की व्यंजना के लिए उसे फारसी पद्धति को अपनाना पड़ता है। प्रेमी को अपने प्रिय के हृदय में, दया, सहानुभूति और करुणा की भावना पैदा करने की लालसा सदैव बनी रहती है। वह यह निरन्तर चाहता है कि मेरे द्वारा की गई बात मेरे प्रेमी को अच्छी लगे। यह अभिलाषा उसके प्रेम का विशेष लक्षण है। इसी से वह अपने कष्ट और संकटों

की बात अपने प्रिय को सुनाता है। इस प्रकार के वर्णन पद्मावत में स्थान-स्थान पर मिलते हैं।

यह पहले कहा जा चुका है कि पद्मावत के संयोग वर्णन में अधिकतर जायसी के आध्यात्मिक पक्ष की बातों को घटाया गया है। वे सभी वर्णन प्रायः घट भी जाते हैं। रत्नसेन मिलने के समय अपनी विरह व्यथा का चित्रण करता है—

बिनु मन मीन तलफ ज़स जीऊ। चातक भएउँ कहत "पिउ पिऊ।"
जरिउँ विरह जस दीपक-बाती। पंथ जोहत भइ सीप सेवाती॥
डाढ़ि डाढ़ि जिमि कोइल भई। भइउँ चकोरी नींद निसि गई।
तोरे प्रेम पेय मोहि भयऊ। राता हेम अगिनि जिमि तएऊ॥
हीरा दिये जौ सूर उदोती। नाहित कित पाहन कित जोती।
रवि पराग से कँवल विगासा। नाहित कित मधुकर कित वासा॥

इस प्रकार के वर्णन तो जैसे तैसे दोनों पक्षों में घट ही जाते हैं। पर कवि जहाँ रति-संग्राम का वर्णन करने लग जाता है वहाँ आलोचक को बड़ी कठिनाई अनुभव होती है। वह लौकिक पक्ष को अलौकिकता में नहीं ले जा सकता। इसके साथ ही कवि की रुचि निकृष्टता का भी पता चल जाता है। कवि कहता है—

भएउ जूझ जस रावन रामा। सेज बिधाँसि विरह संग्रामा।
लीन लङ्क, कंचन गड़ टूटा। कीन्ह सिंगार अहा सब लूटा॥
'औ' जोवन मैमन्त विधांसा। विचला विरह जीउ जो नासा।
टूटे अंग अंग सब मेसा। छूटी माँग भंग भए केसा॥
कंचुकि चूर चूर भइ ताती। फूडे हार मोती छहराती।
चंदन अंग छूट अस भेंटी। बेसरि टूटी तिलक गा मेटी॥
पिउ पिउ करत जो सूखि धनि चातक की भाँति।
परी सो बूँद सीप ज़नु, मोती हो सुख शान्ति॥

कवि ने यहाँ इतना स्थूल वर्णन किया है कि किसी प्रकार यहाँ आध्यात्मिक पक्ष दिखाई नहीं देता। सूफी साधुओं में मद्यपान करना ईश्वरीय प्रेम का प्रतीक माना गया है। इसलिए कवि ने सुहागरात के समय भी मद्यपान का आयोजन किया है। वह मिलन प्रेमी और प्रेयसी का न होकर आत्मा-परमात्मा का मिलन माना है।

सुनि धनि प्रेम सुरा के पिये। मरन जियन डर रहे न हिये।
जा कहँ सोइ बार एक लाहा रहै न ओहि बिनु, ओही चाहा ॥
अरथ दरब सब देह सुहाई। की सब जाहु न जाहु पियाई।
रातहु दिवस रहे रस भोजा। लाभ न देख, न देखैं छीजा ॥

पद्मावती और रत्नसेन का अन्तिम मिलन आत्मा परमात्मा के मिलन का द्योतक है परन्तु कवि की अश्लील वाणी घोर शृंगार का चित्रण कर गई है। यह भी ठीक है कि भक्ति के नाम पर विद्यापति जैसे भक्त कवियों ने भी ऐसे वर्णन किये हैं—

सब निस सेज मिला सांस सुरू। हार चीर बलाया भय जूरू।
सोधनि पान चून भई चोली। रंग रंगीलि निरंग यह भोली ॥
अलक सुरंगिनि हृदय परी। नारंग छुव नागिनी विष भरी।
लरी मुरी हिय हार लपेटी। सुरसरि जनु कालिन्दी भेरी ॥
जनु प्रयाग अरइल बिच मिली। सोभित वेणी रोमावली ॥

इस प्रकार के शृङ्गारिक वर्णनों का अर्थ अन्य क्या लगाया जा सकता है। परन्तु न केवल जायसी के वर्णन में ही बल्कि सिद्ध सन्त और वैष्णव कवियों ने भी ऐसे वर्णन किये हैं। इनसे अगर भक्तिपक्ष में अर्थ लिया जाये, तो अलौकिक प्रेम भाव की तीव्रता व्यंजित होती है। चूंकि धर्म, साहित्य और काव्य में रतिभाव का अन्यतम चित्र मना नहीं माना गया। क्योंकि धर्म, अर्थ और मोक्ष की तरह काम भी मनुष्य के लिए उपादेय है। भारतीय धर्म साधकों ने काम को भी मोक्ष और धर्म की साधना का माध्यम माना है।

ऐसे ही वर्णन हम कालिदास, विद्यापति, जयदेव, सूर आदि की कविताओं में पाते हैं। रामचन्द्र शुक्ल ने इस बात को बड़े स्पष्ट शब्दों में कहा है—अलौकिक पात्रों से युक्त काव्य की शृङ्गारमयी अभिव्यंजना भक्ति के अन्तर्गत ही मानी जाती है, परन्तु लौकिक पात्रों की शृङ्गारमयी अभिव्यक्ति शृङ्गार का विषय ही रहती है, वहाँ उसे भक्ति नहीं समझा जाता। इस दृष्टि से जायसी का स्थूल चित्रण विशेष लांछन की वस्तु नहीं रह जाता। फिर सारे प्रसङ्ग के अन्त में कवि स्वयं अपना अध्यात्म पक्ष स्पष्ट कर देता है—

करि सिंगार तापहँ कहाँ जाऊँ। ओहि देखहुँ ठाँवहि ठाऊँ॥
जो जिउ में लौ उहै पियारा। तन मन सौं नहिं होइ निनारा॥
नैंन माँह है उहै समाना। देखौं तहाँ नाहिं कोउ आना॥

यह तो कवि का आदर्श आध्यात्म पक्ष है जहाँ पद्मावती का आदर्श प्रेम भी प्रकट हो रहा है। प्रेम की पराकाष्ठा पर पहुँच कर साधक समस्त संसार को "सियाराममय" ही समझने लगता है।

संयोग शृङ्गार की परम्परा में कवियों ने 'हावों' का वर्णन भी किया है। जायसी में 'हावों का वर्णन नहीं के बराबर है। इसी से उसके संयोग शृङ्गार में इतनी सजीवता नहीं आ पाई। संयोग शृङ्गार की रीति के अनुसार जायसी ने पद्मावती के अभिसार का पूरा वर्णन किया है जिससे कहीं-कहीं उक्तियाँ अश्लील भी हो गई हैं। परन्तु जायसी ने सर्वत्र प्रेम का भावात्मक रूप ही प्रधान रखा है।

कविता में अन्तर्जगत और बहिर्जगत दोनों का सौन्दर्य वर्णन आवश्यक समझा जाता है। जहाँ पर कवि ने पद्मावती और रत्नसेन के हार्दिक उत्कट प्रेम का वर्णन किया है वहाँ उसने पद्मावती के अंग-प्रत्यंगों को भी सौन्दर्य की दृष्टि से देखा है। नखशिख वर्णन ही प्रेम की उद्दीप्ति के रूप में शृङ्गार क्षेत्र को अधिक प्लावित और पुष्पित करता है। वास्तव में अंगों का वर्णन मनोभावों के साथ करना अधिक उचित समझा जाता है, नहीं तो अश्लीलता स्वाभावतया ही आ जायेगी। कवि जायसी ने पद्मावती के सौन्दर्य का वर्णन पहली बार हीरामन सुए से रत्नसेन के समक्ष करवाया है और दूसरी बार

राघव चेतन के द्वारा अलाउद्दीन के समक्ष करवाया है। दोनों स्थानों पर वर्णन नखशिख की प्रणाली पर ही है। केशों की दीर्घता, सघनता और श्यामलता का वर्णन न करके कवि ने उनके प्रभाव की उद्भावना की है—

सरवर-तीर पदमिनी आई। खोंपा बोरि केस मुकलाई।
ओनई घटा परी जग छाहाँ।
वेनी चोरि झार जो बारा। सरग पतार होइ अँधियारा।।

पद्मावती के मुक्त-हास का प्रभाव इतना है मानो शुभ्र ज्योत्सना अनेक रूपों में सरोवर में विकीर्ण हो गई हो—

बिगसा कुमुद देखि ससि-रेखा। भइ तहँ ओप जहाँ जो देखा।
पावा रूप-रूप जस चाहा। ससि मुख महुँ दरपन होइ रहा।
नयन जो देखा कंवल भा। निरमल नीर सरीर।
हँसत जो देखा हंस भा। दसन ज्योति नगहीर।।

सम्भोग श्रृङ्गार के अन्तर्गत कवि ने कुछ मानसिक दशाओं की व्यंजना भी की है रत्नसेन से पद्मावती के विवाह हो जाने के पश्चात् पद्मावती की काम-दशा का वर्णन बड़ा भावगर्भित है—

कौन मोहनि दहुँ हुति तोही। जो तोही विथा सो अपनी मोही।।
विनु जल मीन तलफ जस जीऊ। चातक भइउँ कहत 'पीउ पीऊ' ।।
जरिउ विरह जस दीपक बाती। पथ जोहत भइँ सीत सेवाती।।
भइउँ विरह दहि कोइल कारी। डारि डारि जिमि कूकि पुकारी।।

प्रस्तुत दोहे में अभिलाषा का कैसा सच्चा प्राकृत स्वरूप है। प्रेम-प्रेम चाहता है। प्रेमी को सदा यही जानने की उत्कण्ठा होती है कि प्रिय भी मेरे विरह में दुःखी है या नहीं। इसीलिए रतिभाव के संचारी रूप में आशा और विश्वास की बड़ी सुन्दर व्यञ्जना हुई है। पद्मावती कहती है—

तौलों रह झुरानी; जो लहि आनसों कन्त।
एहि फूल रहि सिन्दूर होइ सो उठे बसन्त।।

दूती और पद्मावती के सम्वाद में पद्मावती के पातिवृत धर्म की बड़ी विशद् व्यञ्जना हुई है। पातिवृत धर्म संयोग शृङ्गार के अन्तर्गत इसलिए आता है कि कवि पति और पत्नी दोनों के परस्पर पूज्य बुद्धिमय शृङ्गार की व्यंजना कर सके। कवि ने इसके अन्तर्गत रतिभाव की व्यंजना की है। पद्मावती दूती को अपने अनन्य प्रेम भाव की सूचना देती हुई कभी तो प्रिय के महत्त्व पर गर्व जताती है तो कभी धर्मानुराग की सूचना देती है—

अहा न राजा रतन अँजोरा। केहिक सिंघासन केहिक पसेरा।।
चहुँदिसि यह धरमा अँधियारा। सब सिंगार लेई साथ सिधारा।।
काया बेलि जातु तब जामी। सीचनहार आव घर स्वामी।।

इस दूती दूसरे पुरुष की बात कहती है तब वह क्रोध से तमतमा उठती है और धर्म के तेज से भरे वचन कहती है।

रग ताकर हौं जारों काँचा। आपन तजि जो पराएहि राचाँ।।
दूसर कौ जाइ दुइ बाटा। राजा दुइ न होहिं एक पाठा।।

सम्मान और कृतज्ञता में भी जायसी ने ऐसे भावों को मार्मिक भाषा में अभिव्यंजना कराई है।

इस प्रकार जायसी के द्वारा वर्णित संयोग शृङ्गार में परकीया स्वकीया के दाम्पत्य प्रेम का सुन्दर निदर्शन है। कवि ने पहले लौकिक प्रेम का उदय दिखाया है जो पुष्ट होते-होते भगवत्पक्ष में बदल जाता है। यहाँ तक कि पूर्ण प्रेम दशा कों प्राप्त भक्त भगवान को भी प्रिय हो जाता है। प्रेमी होकर प्रिय होने की पद्धति भक्त काव्यों में प्रायः दिखाई गई। इस प्रकार संयोग शृङ्गार का भी कवि ने बड़ा सात्विक और स्वच्छ वर्णन किया है।

प्रश्न ११—"जायसी का विरह अत्यन्त मार्मिक है" इस कथन की विवेचना कीजिए।

उत्तर—"विरह में कितना उल्लास, कितनी शान्ति और कितना बल है जो कभी एकान्त में बैठकर, किसी की स्मृति में, किसी के वियोग में, सिसक-सिसक और बिलख-बिलख कर नहीं रोया, वह जीवन के ऐसे सुख से वंचित है जिस पर सैंकड़ों मुसकानें न्यौछावर हैं। उस मीठी वेदना का आनन्द उन्हीं से पूछो जिन्होंने यह सौभाग्य प्राप्त किया है। हँसी के बाद मन खिन्न हो जाता है, आत्मा क्षुब्ध हो जाती है मानो हम थक गये हों, पराभूत हो गये हों परन्तु विरह में रुदन के पश्चात् एक नवीन स्फूर्ति, एक नवीन जीवन, एक नवीन उत्साह का अनुभव हो जाता है। ऐसा मालूम होता है कि मानो दिल का भारी बोझा हल्का हो गया हो" (प्रेमचन्द)। प्रेमचन्द जी के इन शब्दों में कितनी सार्थकता और आनन्द है। विरह का आनन्द हृदय की सच्ची और पवित्र अनुभूति है। वेदना में मलिनता नहीं। विरह की अग्नि में तपा हुआ प्रेम एकान्त, शुद्ध और निर्मल होता है। उसमें प्रियतम के मिलन के लिए उत्कण्ठा और उत्कट प्रतीक्षा सदैव रहती है, गाम्भीर्य और स्थिरता होती है। यही कारण है कि विप्रलम्भ शृङ्गार का महत्त्व साहित्य जगत के कवि समाज में अत्यधिक रहा है। कौन ऐसा अभागा कवि होगा जो वेदना की तड़पन में स्मृति के झोकों से पराभूत न हुआ हो। जहाँ वेदना है वहाँ स्मृति है, वहाँ तड़पन, टीस और रुदन का प्रमुख स्थान है। कविवर अयोध्यासिंह उपाध्याय ने विरह की अभिव्यंजना कितने सार्थक शब्दों में की है—

यदि विरह विधाता ने सृजा विश्व में था,
तो स्मृति रचने में कौन-सी चातुरी की।
यदि स्मृति विरची तो फिर उसे क्यों है बनाया,
वपन -पटु कुपीड़ा बीज प्राणी उरों में॥

कविवर पन्त के इन शब्दों में विरह का महत्त्व स्वयं सिद्ध है।

अहह ! विरह कराहते इस शब्द को।
निठुर विधि ने अश्रुओं से है लिखा॥

कवि-समाज प्रेम के अश्रुमय स्वरूप पर अधिक रीझा है इसी से; प्रायः प्रत्येक कवि ने विरह की आह्लादिनी शक्ति का आँचल सहर्ष ग्रहण किया है। विरह की वह पुण्यात्मा कालिदास के हृदय में शकुन्तला बन बैठी है तो भव भूति के हृदय में सीता बनकर, सूर के हृदय में राधा बन तो गुप्त और मीरा के हृदय में उर्मिला, यशोधरा या कृष्ण के रूप में है। वह आत्मा अजर और अमर है और प्रत्येक सहृदय प्रेमी के हृदय में करुणा और प्रेम के राग अलापा करती है।

प्रायः ऐसा प्रवाद चला है कि विरह में प्रेम का महत्त्व कम हो जाता है। आँखों से दूर और हृदय से दूर की कल्पना प्रायः प्रेमियों के हृदय को एक प्रकार की विह्वलता और टीस पहुँचाया करती है परन्तु ऐसे प्रेमी जनों को सम्वेदना पूर्वक सान्त्वना देते हुए कविवर कालिदास मेघदूत में लिखते हैं—

स्नेहानाहु किमपि विरहे ध्वसिनस्ते त्व योगा।
द्दिष्टे वस्तुन्युपचिवरसा प्रेम राशि भवन्ति॥

प्रेम के वियोग की प्रवृति यहाँ तक अपना विस्तार कर लेती है कि जड़ वस्तुएँ तक भी वियोगी की विरह वेदना से द्रवीभूत हो जाती है। इस स्थिति का चित्रण करने में प्रायः कई कवियों को सफलता मिली है। जायसी ने नागमती के दुख में पशु पक्षियों को द्रवीभूत होते दिखाया है—

फिर फिर रोय कोई नहीं डोला। आधी रात विहङ्गम बोला।
तू फिर फिर दाहे सब पांखी। केहि दुख रैनि न लावसि आंखी॥

शकुन्तला के सुसराल-गमन के अवसर पर यद्यपि वर्णन विरहमय उल्लास का है फिर भी शकुन्तला के सहज और सरल प्रेम-सम्वन्ध से द्रवीभूत वृक्ष-लता गुल्म, पक्षी, हिरन आदि सभी व्याकुल हैं कोकिल उसके गमन पर आशीर्वादात्मक शब्द बोलती है जिसकी अभिव्यक्ति कालिदास की कुशल लेखनी ने सुन्दर की है—

रम्यान्तरः कमलिनी हरितैः सरोभि—

छायाद्रमैर्नियमिताऽर्क मरीचितापः।

भूयात्कुशेशयर जो म्रदुरेणुरस्याः

शान्तानुकूल पवनश्च शिवनश्च पंथा ।।

हिन्दी साहित्य में विरह-वर्णन अधिकतर चार रूपों में हुआ है पूर्वानु-राग, मान, प्रवासगमन तथा करुण स्थिति में विरह वर्णन। पूर्वानुराग तथा रूपसादृश्य में विरह की स्थिति तभी आती है जबकि प्रियसे संयोग होने से पूर्व गुण, कथन, श्रवण और दर्शन आदि की अभिलाषा होती है, परन्तु उसकी पूर्ति न होने से जो तड़पन और वेदना होती है वही पूर्वानुराग विरह है। दमयन्ती हँस के मुख से नल का गुण श्रवण कर मिलने के लिए आतुर होती है, रत्नसेन तोते के मुख से पद्मावती का रूप सोंदर्य सुनकर मिलन के लिए आतुर और बिह्वल हो उठता है। इस प्रकार का विरह पूर्वानुराग में ही रखा जाता है। रूप सादृश्य पूर्वानुराग से भिन्न वस्तु है। इसमें प्रिय का रूप साम्य वियोगी जिस वस्तु में देखता है वह उसे खाने को, काटने को और मानो जलाने को आ रही होती है। इसी तड़पन से आकुलित हुआ विरही रोता है, कराहता है आँसू बहाता है। ऐसे वर्णनों से तो प्रायः सारा साहित्य ही भरा पड़ा है—इस प्रकार के विरह का सूरदास ने जो वर्णन किया है देखिए—

वे जो देखे राते राते फूलन फूले डार।

हरि बिनु फूल झरी सी लागति झरि झरि परत अंगार ।।

सेनापति—"केतिक अशोक नव चम्पक बकुल कुल !

कौन धौं वियोगिनी को ऐसो बिकराल हैं।

सेनापति सांवरे की सुरति की सुरति की।

सुरति कराई करि डारत विहाल हैं।

संयोग के अनन्तर प्रेम की स्वाभाविक स्थिति में ईर्षा के कारण साधा-रण मानापमान की स्थिति आती है। नायक-नायिका परस्पर रूठ जाते हैं।

उससे जो दुःख पैदा होता है वह मान सम्बन्धी विरह कहलाता है। करुण विप्रलम्भ में मृत्यु आदि के पश्चात् प्रिय के मिलने के लिये जो तड़पन और कसक दिखाई गई है और प्रायः दिखाई जाती है वह सम्भव नहीं। अधिकतर ऐसा विरह करुण-रस की कोटि में ही आता है। प्रवासगमन विरह अधिक महत्त्वपूर्ण है जहाँ प्रवत्स्यत्पतिका नायिका प्रिय के प्रवासगमन के पश्चात् उसके गुणों आदि का चिंतन श्रवण और कथन आदि करती है। लक्ष्मण के वन जाने पर साकेत के नवें सर्ग में जो विरह दिखाया गया है वह इसी कोटि में आता है। इसमें प्रेमी या प्रेयसी के हृदय की कसक-वेदना, पूर्व स्मृतियाँ तथा मिलने को उत्कण्ठा आदि दिखाकर उसके हृदय को पुष्ट किया जाता है। वैसे विप्रलम्भ में मान का कोई स्थान नहीं क्योंकि वह कुछ देर के लिए अपने ही घेरे में रहकर फिर नष्ट हो जाता है। पूर्वराग तथा प्रवास में इस स्थिति की रक्षा की गई है। वियोगी को तड़पने का, आत्माभिव्यक्ति तथा सहन शीलता दिखाने का उसे सुन्दर अवसर मिल जाता है। अतः इन चारों में प्रवास विरह की विप्रलम्भ शृङ्गार का महत्वपूर्ण स्वरूप है। वियोग पक्ष में वेदना की पूर्ण निवृति तथा विरही के हृदय का सारा आवरण हटाया जाता है। इसलिये उसमें दस कामदशाओं का चित्रण भी हो जाता है। अभिलाषा, चिंता, गुणकथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मरण। अब हम जायसी की नागमती के विरह वर्णन पर गम्भीर दृष्टि से दृष्टिपात करते हैं।

'पद्मावत काव्य की रचना करते समय जायसी ने लौकिक सम्बन्धों को स्पष्ट करने के उद्देश्य से रत्नसेन और पद्मावती के कथानक को पृष्ठाधार बनाया है। उन्होंने इस कृति में शृङ्गार को प्रमुख स्थान दिया तथा अन्य रस करुण, भयानक और शांत गौण रूप में रहे। शृङ्गार का चित्रण परिस्थितियों के आधार पर संयोगात्मक और वियोगात्मक दोनों स्थितियों में हुआ है। लेकिन इतना होने पर भी कवि का मन विप्रलम्भ शृङ्गार के प्रति अधिक सजग और उन्मुख रहा है। वास्तव में "पद्मावत" में प्राप्त होने वाला वियोग शृङ्गार कवि की अपनी मौलिकता है और है अनन्यता। हिंदी साहित्य में यह वर्णन अद्वितीय और अप्रितम है।

कवि जब काव्य के सौंदर्य को स्थिर रखना चाहता है तो उसका यह कर्तव्य हो जाता है कि वह उस सौंदर्य को परिवर्द्धित और विकसित करने के लिए उसके चतुर्दिक वातावरण के प्रति सावधान रहे। महाकवि जायसी ने इसे भाव की दृष्टि में रखा और उसके लिये नागमती के स्वतन्त्र चरित्र को लिया। तथा उसके चरित्र की रक्षा के लिए अपने कथानक को अनेक मोड़ प्रदान किये। वे सभी मोड़ विरह वर्णन के इधर उधर ही चक्कर लगाते रहे। कवि ने रत्नसेन के हृदय में पद्मावती के प्रति अनुराग की भावना को उद्-बुद्ध कर विरह की सृष्टि की। अतः पद्मावत में विरह दो प्रकार से उन्मुख रहा है—एक की प्रवृत्ति नर की वियोग भावना की ओर है, दूसरा नारी के विरह की ओर उन्मुख रहा है।

जायसी ने काव्य में विरह की व्यंजना का भारतीय स्वरूप प्रधान रखा है। भारतीय नारी अपने विरह का प्रदर्शन नहीं करती। गीली लकड़ी की भांति भीतर ही भीतर सुलगती रहती है जिसका धूंआ भी कभी प्रकट नहीं होने पाता। जायसी स्वयं विरही थे अतः उन्होंने प्रेम में विरह की स्थिति की अभिव्यंजना सर्वथा सत्य की है—

"बदन पिअर जल उमगई नैना।
परगत दुअई प्रेम के वैना॥"

अतः वे मीरा की भाँति चिल्ला चिल्ला कर और दुहाई देकर यह कहते है—

"प्रेम के फंद जानि को परहि।
जनि कोई कोई प्रेम कर राता॥
प्रीति बेलि जनि अरुझै कोई।"

क्योंकि प्रेम से संयोगात्मक पक्ष का आनन्द तो सभी ग्रहण करते हैं परन्तु विरह की अग्नि में कोई ही झुलझता है। वह सती धन्य है जो इस पीड़ा का स्वागत करती है—

"मुहम्मद सती सराहिये जरै जो अस प्रिय लागि॥"

यह सर्वमान्य तथ्य है कि विरह केवल प्रिय के अभाव से ही उत्पन्न होता है अतः यही अभाव विरही या विरहिणी के दुःख का मूल हो जाता है। उस दुःख में एक प्रकार का असीम आनन्द और संवेदना छिपी रहती है। वह जड़ और चेतन से स्वभावतः ही अपरिचित हो जाता है। कालिदास मेघदूत में लिखते हैं—

"कामार्त्ताहि प्रकृति कृपणाष्ट चेतना चेतनेषु"

यही कारण है कि कामार्त्त हुई नागमती के आँसुओं से समस्त प्रकृति गीली हो चुकी है और उसी के विरह ज्वाला में झुलसी हुई दिखाई देती है विरह की तीव्र पीड़ा से कराहती हुई नागमती के आदर्श सन्देश की ओर भी अवलोकन कीजिए—उसे वासना की लिप्सा नहीं, केवल दर्शन मात्र से सन्तुष्ट होने वाली अकिञ्चन नारी है—

पदमावति सौं कहेहु विहङ्गम। कंत लुभाई रहि करि संगम ॥
तोहि चैन सुख मिलै सरीरा। मो कहं हिये दुन्द दुख पूरा ॥
हमहुँ बियाही संग ओहि पीऊ। आपुहि आप जानु पर-जिऊ ॥
मोहि भोग सौं काज न वारी। सौंह दीठि कै चाहन हारी ॥

ऐसे सन्देश को सुनकर किस भारतीय नारी का हृदय गर्व से फूल नहीं जायेगा। भारतीय नारी वासना नहीं चाहती, ऐश्वर्य नहीं चाहती, प्रियतम का दर्शन मात्र, उसकी कृपादृष्टि ही उस वियोगिनी के लिए पर्याप्त है।

हिन्दी-साहित्य में पशु पक्षियों द्वारा प्रियतम का पता पूछने के उदाहरण तो मिल जाते हैं जैसे—"हे खग, मृग हे मधुकर श्रेणी, तुम देखी सीता मृगनैनी" परन्तु उसके उत्तर में पशु-पक्षियों को सहानुभूति प्रदर्शित करते कब देखा है। नागमती के विरह से द्रवीभूत हुआ एक विहंगम बोल उठता है—

फिर-फिरि रोव कोई नहीं डोला। आधी राति विहंगम बोला ॥
तू फिरि-फिर दाहे सब पाँखी। केहि दुःख रैन न लावसि आँखी ॥

नागमती के विरह में ऐसी सम्भावना कोई आश्चर्य का विषय नहीं।

जायसी का विरह वर्णन कहीं कहीं अत्यन्त अत्युक्तिपूर्ण होने पर ऊहात्मक नहीं बना उसमें गाम्भीर्य बना रहा है। जाड़े के दिनों में भी पड़ोसियों तक पहुँच उन्हें बेचैन करने वाले, शरीर पर रखे हुए कमल पत्तों को सुनकर पाखण्ड बनाने वाले, विरह से कुशकाय होकर श्वासप्रश्वास के पालने में झूलने वाली नायिका के ताप का चित्रण इसमें नहीं हुआ यद्यपि जायसी की नागमती का ताप किसी से कम नही है—क्योंकि वह स्वयं कहती है—

हाड़ भये सब सब किंकरी-कसें भई सब ताँति।
रोव रोव ते धुनि उठे कहों विथा कहि भाँति ॥
देहि कोयला भई कंत सनेहा। तोला मास रहा नहिं देहा ॥
रकत त रहा विरह तन जरा। रती रती होई नैनन्ह ढरा ॥

हम यह निर्भीक होकर तो नहीं कह सकते कि जायसी के विरह वर्णन में ऊहा नही मिलती क्योंकि कही कहीं दो चार पद ऐसे आगये हैं।

जैसे— "जेहि पंखी के नियर होइ कहि विरह की बात।
सोइ पंखी जाइ जरि तरवर होंइ निपात ॥"

परन्तु यह बात निर्विवाद सत्य है कि विरह-ताप के वेदनात्मक स्वरूप की विशद व्यंजना जायसी की अपनी विशेषता है। उन्होंने अत्युक्ति की है परन्तु संवेदना के रूप में। जायसी ने यह अधिक कहा है कि ताप हृदय में ऐसा जान पड़ता है जैसे—

जानहुँ अगिनि के उठहि पहारा। औ सब लागाहि अङ्ग अङ्गारा।

प्रेम चाहे कितना दुःखदायी और यंत्रणामय क्यों न हो जाये परन्तु हृदय उस स्थिति से विलग नहीं होना चाहता। उस यन्त्रणा के सहन में भी एक प्रकार की सांत्वना और आनन्द है। प्रेमजन्य सन्ताप के अतिरेक से नागमती को रह-रहकर सन्ताप सहने की बुरी लत पड़ गई है। महादेवी की तरह—"मिलन का मत नाम लो मैं विरह में चिर हूँ" नागमती भी इस ओर प्रवृत्त हैं। जायसी की अनूठी व्यंजना देखिये जो साहित्य में ढूँढने पर भी नहीं मिलेगी।

जरत बजागिनि करु पिउ छांहा। आइ बुझाउ अगारन्ह माहाँ।
लागिउँ जरैं, जरै जस भारू। फिरि फिरि भूँजेसि तजिउँ न बारू॥

मनुष्य के सहज सम्पर्क में आने वाले, उसी के द्वारा पाले गए पौधे किस प्रकार उसके दुःख में दुःखी और सुख में सुखी होते हैं यह बड़े कौशल के साथ जायसी ने दिखाया है। प्रकृति के संवेदन की कल्पना तो संस्कृत साहित्य में यत्र तत्र गृहीत है फिर भी हिन्दी में यह कल्पना सदैव चिर-नवीन ही रहेगी। प्रकृति की सहानुभूति को प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि मानव की आत्मा में रस-समन्वित गुणों का व्यापक प्रसार हो। संयोग की बात यह है कि नागमती में हम उच्चतम मानवीय गुणों की संसृष्टि पाते हैं। यही कारण है कि जिस समय उसके हृदय में गहन आन्तरिक वेदना है उस समय उससे सहानुभूति रखने वाले प्रकृति के उपादद्य भी पीड़ा अनुभव करते हैं। इसके अनुसार नागमती के दुःख से व्याकुल पक्षियों की वेदना का अन्त तभी होता है जब रत्नसेन पुनः चित्तौड़ में आ जाते हैं—

पलुटी नागमती के बारी, सोने फूल फूलि फूलवारी।
जावत पंखि रहे सब दहे, सबै पंखि बोले गहगहे॥

जायसी ने मानव-हृदय की सामान्य भाव-भूमि पर विरह की ऐसी धारा प्रवाहित की है जिससे हृदय का समस्त कलुष धुल जाता है। कौन सहृदय रसिक होगा जो निम्न पद को पढ़कर न तड़पा हो—

यह तन जारौ छार कै कहौ कि पवन उड़ाब।
मकु तेहि मारग उड़ि परै, कंत धरैं जहँ पाँव॥"

विप्रलम्भ शृङ्गार को ही जायसी ने 'पद्मावत' में प्रधान रखा है। कवि ने जहाँ विरह दशा में भारतीय पद्धति का अनुसरण किया है वहाँ फारसी साहित्य द्वारा पोषित भावों के छींटे भी यत्र तत्र पाये जाते हैं। विदेशी प्रभाव के कारण वियोग दशा में वीभत्स चित्र भी आ गये हैं। जैसे—

विरह सरागन्हि भूजै माँसू। गिरि गिरि परें रकत के आँसूँ॥
कटि कटि माँसु सराग परोवा। रकत कै आँसू माँसु सब रोवा॥

नागमती के विरह के अन्तर्गत बारहमासा भी आ जाता है। भिन्न-भिन्न मास में होने वाली आन्तरिक मनोव्यथा का चित्रण बारहमासा में मिलता है। बारहमासा में वेदना का अत्यन्त निर्मल स्वरूप, दाम्पत्य जीवन का मर्म-स्पर्शी और माधुर्य पूर्ण विकास, प्राकृतिक वस्तुओं और उसके व्यापारों के साथ सर्वथा अकृत्रिम, सरल स्निग्ध और मृदुल रूप में भारतीय हृदय हमें प्राप्त हुआ है। इसमें विप्रलम्भ शृङ्गार उद्दीपन रूप में है। बारहमासे में मुख्यतः दो बातें देखने में मिलती है—

१—दुःखों के नाना रूपों और कारणों की उद्भावना।

२—प्राकृतिक वस्तुओं और व्यापारों का दिग्दर्शन।

दूसरे प्रकार में कवि ने केवल वस्तुओं एवं व्यापारों की पृथक-पृथक झलक दिखाकर प्रेमी हृदय की अभिव्यंजना की है।

जैसे— जेठ जरै जग चलै लुवारा उठहि बवंडर परहि अंगारा।
उठै आगि औ आवे आंधी, नैन न सूझ मरों दुख बाँधी ॥
चढ़ा आषाढ़ गगन घन गाजा-सजा विरह दुन्द दल बाजा।
खडग बीजु चमकै चहुँ ओरा। बुन्द बान बरसहिं चहुँओरा।

कवि ने अपनी भावुकता का परिचय तो इस रूप में दिया है कि रानी नागमती अपने रानीपन को भूल गई है। राजसी-ठाठ उसके हृदय से परे की वस्तु है और जनता की सामान्य भावभूमि से दूर की वस्तु है। वह हिन्दू गृहिणी की सामान्य स्थिति के भीतर आ गई है। इसीलिये उसके प्रेम का उज्ज्वल प्रकाश दीप्तिमान हो उठा है।

पहले प्रकार के चित्रण में कवि ने दुःख के नाना रूपों और कारणों की उद्भावना की है। उसमें कोमलता, सरसता, और गम्भीरता है। विरह दुःख दशा है जिसका पोषण दुःख की वस्तुओं से होता है। विरह में कष्टदायक वस्तु अधिक कष्टदायक प्रतीत होती है—

चारिहु पवन झकोरैं लागी लङ्का दाहि पलङ्का लगी।
उठै आगि औ आवै आंधी नैन न सूझ मरौं दुखबाँधी ॥

नागमती दूसरों को सुखी देखकर अपने दुःख के नाना रूपों और कारणों की उद्भावना करती है। सभी के मित्र आ गये परन्तु नागमती अकेली है इस वैषम्य की भाँवना ने उसे और भी दुःख दिया। यह उसकी एक स्वाभाविक प्रवृत्ति हो गई है—

चित्रा मित्र मीन कर आवा। पपीहा पीउ पुकारता पावा ।।

स्वाति बूँद चातक मुख परै। समुद्र सीप मोती सब भरै ।।

सरवर संवरि हँसि चलि आए। सारस कुरलहि खंजन देखाए ।।

परन्तु नागमती का प्रिय नहीं आया इसीसे वह अधिक व्याकुल है।

विरहिणी की सादृश्य-भावना का वर्णन भी परम्परा प्रसिद्ध है। कवियों ने ऋतु-सुलभ-व्यापारों और वस्तुओं से उसका साम्य भी किया है। ऐसा वर्णन हमें प्रायः विरहवर्णन के काव्य में मिला है। जहाँ हम एक ओर फटे दरार देखते हैं तो दूसरी ओर विरहिणी का फटा हृदय देखिए। एक ओर यदि ओस पड़ती है तो दूसरी ओर अश्रु धारा है—एक ओर यदि सूखे हुए पीले पत्ते हैं तो दूसरी ओर विरहिणी की पीली देह है। इस प्रकार का वर्णन उद्धवशतक के षट् ऋतु वर्णन में रत्नाकर ने भी किया है। अतः ये कल्पनाएँ यदि किसी सीमा तक सत्य न हो तो दूर की सूझ अवश्य है।

अन्त में यह कहा जा सकता है कि जायसी ने अपने काव्य में विरह का अत्यन्त उत्कृष्ट प्रतिपादन किया है जिसमें स्वाभाविकता और मार्मिकता का विशेषतया समावेश है। यह कृति पाठक के चित्त का तुरन्त स्पर्श करती है।

प्रश्न १३—पद्मावत की प्रेम पद्धति का विश्लेषण कीजिए।

उत्तर—संसार के प्रत्येक अणु में प्रेम की रसमयी और स्निधधारा को प्रवाहित करना, तथा उसे अमरता प्रदान करना कवीश्वरों का उद्देश्य रहा है क्योंकि प्राचीन आचार्यों ने "रसात्मकं वाक्यं काव्यं" की उक्ति में रस शब्द

पर विशेष जोर दिया है। अतः यह भी माना जा सकता है कि प्रेम भी उन्हीं रसों में से एक होगा क्योंकि प्रेम ही शृङ्गार का मूल है। प्रेम के विभिन्न रूपों का बड़ा ही मुग्ध और आकर्षक वर्णन साहित्य के श्रेष्ठ ग्रन्थों में मिलता है। प्रेम की ठीक शब्दों में व्याख्या करना, उसे सहज में भला या बुरा कहना, उसका समुचित निरूपण करना कठिन से कठिनतर है। प्रेम की व्याख्या कबीर के शब्दों में तो "अकह, अथाह महा' है क्योंकि वे लिखते हैं—

"अकथ कहानी प्रेम की, कछु कही नहीं जाये"

उनके विचार में प्रेम की थाह को पाना भी कोई सहज कार्य नहीं, उसके लिए त्याग चाहिए क्योंकि—"यह तो घर है प्रेम का खाला को घर नाहि। सीस उतारे भुंई धरै तव पैठे धरमाँहि॥" कबीर की यह वाणी प्रेम निर्वाह के लिये महान त्याग, साधना और अभिन्नत्व की अपेक्षा करती है। कविवर विहारी प्रेम-तत्व-निरूपण की दृष्टि से सच्चे पारखी और अनुभवी है अतः प्रेमी जन विहारी की दृष्टि में श्रद्धा के भाजन हैं।

गिरि तें ऊँचे रसिक मन, बूढ़े जहाँ हजारु।
वहै सदा पशु नरन को प्रेम-पयोधि पगारु॥

प्रेम का ही स्वरूप वैसे तो शृङ्गार में आ जाता है जिसमें मनुष्य की सुखात्मक और दुखात्मक वृति का सुन्दर सहयोग है। इसके अतिरिक्त भी प्रेम का क्षेत्र बहुत व्यापक है। जो प्रणय, स्नेह, अनुराग, श्रद्धा, वात्सल्य आदि दृष्टिकोणों से भिन्न-भिन्न सम्बन्ध वाले व्यक्ति को प्रदर्शित किया जा सकता है अतः इससे प्रेम की महत्ता स्वतः सिद्ध है। इसका क्षेत्र इतना हैं कि जितना घृणा, क्रोध, असूया आदि का नहीं। फिर प्रेम का प्रभाव तथा वातावरण सदैव सुखकारी होता है। प्रेम की परिपुष्टि सहनशीलता, आत्मत्याग, आत्म-विकास, सौन्दर्य, तन्मयता, सहृदयता तथा रसिकता आदि से होती है। प्रेमी व्यक्ति का हृदय बिशाल और उदार; व्यक्तित्व महान् और आदर्श हो जाता है।

शृङ्गार रसराज माना गया है। शृङ्गार प्रेममय होता है। अतः शृङ्गारी कवि का कार्य प्रेम के अश्रुमय तथा हर्षमय क्षेत्र में विचरण तथा केलिक्रीड़ा

करना है, जहाँ पर उसे प्रेम के सहज-सौकुमार्य रूप से प्रेरणा मिलती है। और वह हर्षातिरेक से स्वानुभूति की अभिव्यंजना सहज और सुन्दर रूप से कर सकता है।

यह बात तो सर्वमान्य तथा निर्विवाद सत्य है कि प्रेम साधना; त्याग; आत्म बलिदान और आत्मप्रदर्शन की अपेक्षा करता है शायद इसीलिए ही तो सूफी कवियों ने प्रेम को 'पीर' का नाम दिया है। प्रिय की बिलगता वह एक क्षण के लिए नहीं सह सकता। प्रिय के द्वारा की गई उपेक्षा उसे असह्य हो उठती है। अतः सूफी कवियों ने प्रेम-मार्ग को कण्टकाकीर्ण कठिन और अगम्य जानकर इस प्रकार कहा है—

प्रेम के फन्द जनि कोई परहि। जनि कोई होइ प्रेम कराता
प्रीति बेलिजनि अरुझै कोई—अरुझै मुए न छूटे सोई ।।
प्रीति बेलि ऐसे तन डाढ़ा ! पलुहत सुख, बाढ़त दुःख बाढ़ा ।।
प्रीति अकेलि बेलि चढ़ि छावा। दूसर बेलि न संचर पावा ।।

प्रेम के इसी व्यापक दृष्टिकोण को लेकर पद्मावती की आलोचना करनी यथा संगत है। क्योंकि इस महाकाव्य में जिस प्रेम का निरूपण हुआ है वह भी दाम्पत्य-प्रेम की एक विशेष प्रणाली के अन्तर्गत आता हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने दाम्पत्य प्रेम के अन्तर्गत कई प्रकार की प्रणालियों की ओर निर्देश किया है। प्रायः वे सभी प्रणालियाँ संस्कृत तथा हिन्दी साहित्य के सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थों में व्यवहृत हैं। सर्वप्रथम उस प्रेम की चर्चा की जायगी जिसको आदि काव्य बालमीकी-रामायण में दिखाया है। इस प्रेम का विकास जीवन की विकट स्थितियों में अर्थात् सीता-हरण के पश्चात् राम में स्फुरित होता है। उसकी क्रान्ति सहसा फूट पड़ती है। परन्तु यहाँ यह कह देना भी अनुचित नहीं होगा कि यहाँ पारस्परिक प्रेम की आनन्द विधायिनी शक्ति लक्षित होती है जो अत्यन्त शुद्ध, स्वाभाविक तथा कामुकता से परे मनुष्य के दिखाई पड़ती है।

शुक्लजी ने दूसरी प्रणाली में पूर्वानुराग को रखा है। जिसमें संयोग-विप्रलम्भ दोनों अवसरों का सन्निवेश है। अभिज्ञान-शाकुन्तल, विक्रमोर्वशी

आदि में इसी प्रणाली को लिया गया है। तीसरे प्रकार की प्रणाली में प्रेम का उदय प्रायः राजाओं के अन्तःपुर आदि के भीतर भोग-विलास से पूर्ण वातावरण में दिखाया गया है। इसमें नायक अन्तपुर में हिरन की भाँति चौकड़ी भरता और लुकता, छिपता दिखाई देता है। उत्तरकाल के संस्कृत नाटकों में इस प्रकार के पौरुषहीन और विलास युक्त प्रेम की लीला दिखाई गई है। रत्नावली, कर्पूरमंजरी, प्रियदर्शिका आदि में इसी प्रकार का प्रेम वर्णित है।

चौथे प्रकार का प्रेम उद्दीपन विभाग में आता है जहाँ गुण-श्रवण, चित्रदर्शन, स्वप्नदर्शन तथा आनन्द-प्रसन्नता आदि को देखकर बैठे बिठाए ही हो जाता है। उषा और अनिरुद्ध का प्रेम इसी प्रकार का है। इसमें प्रयत्न स्त्री की तरफ से होता है। इसकी सूचना भारतेन्दु ने इस प्रकार दी है—"पगन में छाले परे, नांघिवे को नाले परे, तऊ लाल लाले परे रावरे दरस को।"

इन चार प्रकार की प्रेम-प्रणालियों का परिचय संस्कृत तथा हिन्दी दोनों साहित्यों में हुआ है। चोथे प्रकार की प्रणाली को देखकर यह कहने की आवश्यकता नहीं रहती कि चौथे प्रकार के प्रेम के अन्तर्गत ही पद्मावत को लिया जा सकता है। परन्तु कहना न होगा कि पद्मावत का प्रेम कुछ निजी विशेषता रखता है। जायसी के शृङ्गार में मानसिक पक्ष प्रधान है, शारीरिक पक्ष गौण है। आलिंगन, चुम्बन और स्पर्श आदि का वर्णन नहीं के बराबर है। अधिकतर वेदना और मन के उल्लास का वर्णन है। 'पद्मावत' में नायक का प्रेम उस आदर्श को लिए है जिसका सुन्दर स्वरूप हमें लैला-मंजनू, शीरीं-फरहाद आदि के किस्से कहानियों में मिलता है। अन्तर केवल इतना ही है कि उन कहानियों में प्रयत्न अधिक नायक की ओर से रहता है। परन्तु जायसी ने नायक और नायिका दोनों के प्रेम की तीव्रता को समान रूप दिया है जिससे भारतीय तथा फारसी दोनों प्रणालियों का समन्वय हो गया है। फ़ारसी मसनवियों का प्रेम एकाँतिक, लोक-बाह्य और आदर्शात्मक होता है जो संसार की व्यावहारिक परिस्थितियों में दिखाया नहीं जाता। प्रेम-मार्ग में कठिनाइयाँ तो आती हैं परन्तु वे कठि-

नाइयाँ सामान्य जगत से परे प्रेम-मार्ग की होती हैं। नायक मिलन की तीव्र उत्कंठा में बड़ा साहसी, वीर और दृढ़ प्रतिज्ञ दिखाया जाता है। भारतीय प्रेम-पद्धति तो आदि से ही लोक सम्बद्ध और व्यवहारात्मक रही है। उसकी प्रभा जीवन के भिन्न-भिन्न विभागों में फूटती और प्रज्वलित होती है। राम के द्वारा पुल बाँधना, रावण पर आक्रमण आदि को, हम केवल प्रेमिका को पाने का प्रयत्न ही नहीं कह सकते बल्कि उसमें एक प्रकार का लोक-हित और शौर्य भी निहित है। इस प्रकार की प्रेम-पद्धति का वर्णन हमें नैषधीय-चरित्र, कादम्बरी तथा कृष्ण चरित आदि में भी मिलता है। पद्मावत में लोक-व्यवहार का निर्वाह कवि ने किया है। पद्मावती मिलन की उत्कण्ठा में जब राजा योगी होकर निकलता है तो उसकी माता और पत्नी उसे रो-रोकर मना करती है। इसी प्रकार जब वह सिंघलद्वीप से लौटता है तो वहाँ भी पद्मावती और उसकी सखियों में स्वाभाविक वेदना और वियोग का दुःख दिखाया गया है। इसके अतिरिक्त पद्मावती के समागम से डाह आदि लोक-व्यवहार का निर्वाह भी हुआ है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि 'पद्मावत' की प्रेम ज्योति सामान्य-लोक क्षेत्र में ही फूटती दिखाई देती है।

पद्मावत में वर्णित प्रेम एकान्तिक, गूढ़ और गम्भीर होते हुए भी जीवन के दोनों छोरों को स्पर्श करता हुआ विकसित होता है। उसकी प्रेम-गाथा सामाजिक तथा पारिवारिक हो गई है। भावात्मकता और व्यवहारात्मकता का सन्निवेश कर कवि ने जीवन और प्रेम दोनों पक्षों की अविच्छिन्नता की रक्षा की है। पूर्वार्द्ध में पूर्णतया प्रेम ही है। उत्तरार्द्ध में जीवन के विभिन्न अङ्गों का स्पर्श मिलता है।

'पद्मावत' का प्रेम विशिष्ट और एकनिष्ठ है। मनुष्य को जब किसी बढ़िया वस्तु का परिचय प्राप्त होता है तब उसको लेने की इच्छा लोभ के अन्तर्गत रहती है। किसी के सौन्दर्य की चर्चा सुनकर हृदय में जिस भाव का स्पर्श होता है वह भी लोभ है परन्तु विशेषोन्मुख। उसे प्रेम की कोटि में नहीं रख सकते। बिना परिचय के प्रेम नहीं हो सकता। यदि हो भी जाये तो वह स्वाभाविक और चिर-स्थायी नहीं होगा। प्रेमी को जब तक साक्षा-

स्कार न हो जाये, प्रेम में स्थिरता नहीं आ सकती। अतः पद्मावती का सौन्दर्य वर्णन सुनकर रत्नसेन के हृदय में जब प्रेम पैदा होता है तब तक तो वह लोभ ही है। परन्तु जायसी ने आगे चलकर उसी लोभ को परिपुष्ट और विकसित करने के लिए रत्नसेन की विरह-विह्वलता, आत्मत्याग आदि का जो परिचय दिया है वहाँ तक तो प्रेम-पद्धति दूसरों की नकलमात्र है। परन्तु पद्मावती को शिव के मन्दिर में देखकर वेसुध होना, सुन्दरतम पार्वती को अप्सरा के रूप में देखकर मोहित न होना रत्नसेन की एकनिष्ठता और अनन्यता का द्योतक है। यहीं पर रत्नसेन का प्रेम वास्तव में मुखरित हुआ है। क्योंकि प्रेमी दूसरा रूप नहीं चाहता। दुष्यन्त को शकुन्तला के समान सौन्दर्य दिखाई नहीं दिया। लैला कोई खूबसूरत नहीं थी परन्तु मजनूं की आँखों में वह अनुपम सुन्दरी थी। इसी विशिष्टता को और भी अधिक पुष्ट करने के लिए जायसी ने गुणश्रवण के साथ चित्र दर्शन को भी रखा है। दूसरी ओर राघव चेतन के मुख से रूप-सौन्दर्य का वर्णन सुनकर अला-उद्दीन के द्वारा पद्मावती को प्राप्त करने का प्रयत्न भी उग्र और लोभ-लंपट के रूप में है। अलाउद्दीन के प्रेम में अनौचित्य है। क्योंकि एक तो पद्मावती विवाहिता है दूसरी ओर अलाउद्दीन का उग्र प्रयत्न और बलात्कार करने की उत्सुकता भी है जिसने पद्मावती के हृदय में उसके प्रति ठीक भावना पैदा नहीं होने दी।

रत्नसेन और पद्मावती के विवाह के पश्चात् पद्मावती का प्रेम दो स्थानों पर अधिक अनन्य रूप से मुखरित होता है पहला स्थान तो वह है जब रत्नसेन अलाउद्दीन के द्वारा बन्दी होता है वहाँ पर कवि ने प्रेम प्रसूत साहस का परिचय दिया है। पद्मावती अविलम्ब गोरा बादल के पास दौड़ी-दौड़ी जाती है और पति के बचाव के लिए प्रार्थना करती है। उस समय वह क्षुब्ध और विह्वल दिखाई देती है। दूसरा समय रत्नसेन की मृत्यु पर आता है। अवसर दोनों विपत्ति के हैं परन्तु दूसरे अवसर पर सतीत्व की दृढ़ता दिखाकर कवि ने हिन्दू स्त्री के जीवन-दीपक की अत्यन्त उज्ज्वल और दिव्य प्रभा दिखाई है। रत्नसेन के मरने पर वह रोती नहीं, परन्तु दूसरे लोक में मिलन की तीव्र आकांक्षा करती है।

पद्मावती के नव-प्रस्फुटित प्रेम के साथ-साथ कवि ने नागमती के गार्हस्थ्य जीवन को भी पुष्ट किया है। उन दोनों में सपत्नी डाह नहीं है। नागमती आदर्श पति प्राणा और हिन्दू पत्नी के मधुर रूप में सामने आई है। पहले हम उसे रूपगर्विता के रूप में देखते हैं। वे दोनों दाम्पत्य सुख के द्योतक हैं।

पुरुषों में बहु विवाह की प्रथा होने से प्रेम-निर्वाह में जटिलता आ ही जाती है। सपत्नियों के कलह से वह घबराता भी है परन्तु विवाह किये बिना रह भी नहीं सकता। परन्तु पद्मावती और नागमती के बीच के कलह को कवि ने एक अनुपम दार्शनिक सूझ से सुलझाया है।

"एक बार जेइ प्रिय मन बूझा। सो दुसरे सौं काहे क जूझा।
ऐस ज्ञान मन जान न कोई। कबहुँ राति कबहुँ दिन होई॥
धूप छाँह दूनौ एक रंगा। दूनों मिले रहिहि एक संगा।
जूझव छाँड़हु बूझहु दोऊ। सेव करहु सेवाफल होऊ॥

पद्मावत में वर्णित प्रेम वास्तव में उच्च और गम्भीर है। कहीं तो उस का स्वरूप लौकिक है और कहीं इस लोक बन्धन से परे। हर स्थान पर कवि का आलम्बन वही रहा है जहाँ उसकी वह प्रेम से रक्षा कर सका है। प्रिय से सम्बन्ध रखने वाली सभी वस्तुयें कितनी प्रिय होती हैं। नागमती को प्रिय की ओर ले जाने वाला मार्ग भी अत्यन्त रुचिकर लगता है—सुनिए वह क्या कहती है—

वह पथ पलकन्ह जाई बौहारौं। सीस चरन के चलीं सिधारौं।

जायसी के अनुसार प्रेम एक नित्य सुन्दर एकरस एवं एकान्तिक आनन्द प्रद पदार्थ है। जिसके उपलक्ष में प्रेमी को भाँति-भाँति के कष्ट सहन करने पड़ते हैं। यहाँ तक कि यदि अवसर आ जाये तो प्राणों की आहुति भी देनी पड़ जाती है। प्रेम की मनोवृति इतनी प्रबल होती है कि वह प्रेमी को सदैव एक भाव में बने रहने के लिए बाध्य करती है जिससे उसका सारा जीवन एकोन्मुख एवं एकनिष्ठ हो जाता है। वह प्रेम पात्र के

लिए बिक-सा जाता है। उसे प्रेम के अतिरिक्त कोई भी वस्तु सुन्दर दिखाई नहीं देती। यही प्रेम की विशेषता है—

मुहम्मद बाजी प्रेम की, ज्यौं भावै त्यों खेल।
तिल फूलहिं के संग ज्यों होइ फुलायल तेल॥

प्रेम की मनोवृति के अन्तर्गत जायसी के अनुसार, किसी पदार्थ को आत्म सात् करने की अभिलाषा अथवा चाह का होना परमावश्यक है। इस बात को उन्होंने हीरामन तोता द्वारा पद्मावती का रूप वर्णन करवा कर राजा रत्नसेन के प्रेम का वर्णन कर पद्मावती के हृदय में प्रेम की तीव्र उत्कण्ठा पैदा की है। यहाँ जिस वस्तु को रत्नसेन पाना चाहता है वह वस्तु वास्तव में अपनी ही है परन्तु दुर्भाग्यवश सात समुद्र पार जा पड़ी है। अतः यहाँ पद्मावती का परिचय कोई नवीन वस्तु नहीं। मूलतः जायसी ने जिस प्रेम तत्व को स्पष्ट करने के लिए इस 'पद्मावत' ग्रन्थ को लिखा है वह प्रेमतत्व वास्तव में ईश्वरोन्मुख है जो सारे ब्रह्माण्ड के मूलाधार परमेश्वर के प्रति उद्दिष्ट होने के कारण 'धरमक प्रीति' बनकर सबके हृदय में एक समान रूप से आविर्भूत हुआ है। इसमें परमात्मा से बिछुड़ी हुई आत्मा विरह-व्यथा के कारण अधिक व्यथित और आकुल है। अतः जायसी ने दोनों की तड़पती हुई आत्माओं को मानों पहले से ही समन्वित करके रखा हो। जायसी लिखते हैं—

रतनसेन यह कुल निरभरा।
रतनजोति मनि माथे परा॥
पदुम पदारथ लिखी सो जोरी।
चाँद सुरुज जस होई अंजोरी॥

जायसी ने अपने निर्दिष्ट प्रेम-मार्ग में विरह को विशेष महत्त्व दिया है जिससे प्रेम का मार्ग अत्यन्त दुर्गम और विकट हो जाता है। संसार की क्रूरता पूर्ण कठोर वस्तुओं में सबसे अधिक प्रभाव विरह का क्रूर है। यह एक प्रचंड ज्वाला है जिसके प्रबल वेग से सभी के हृदय जल कर राख हो जाते हैं।

जग महँ कठिन खड़ग कै धारा ।
तेहि तें अधिक विरह कै झारा ।।

इसके अतिरिक्त विरह की करालता असह्यनीय है। यह क्रूरकाल के आक्रमण के समान भयंकर और सालने वाली है—

विरहा कठिन काल कै कला, विरहन सहै काल वरु भला ।
काल काढ़ि जिउ लेइ सिधारा, विरह काल मारे पर मारा ।।
विरहा आग पर मेलै आगि, विरह घाव पर घाव बजागि ।

जायसी के अनुसार सच्चा विरह-तत्व केवल मानव जाति तक सीमित नहीं यह संसार के अणु अणु में प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकता क्योंकि—

विरह के आगि सूर जरि काँपा। रातिहि दिवस धरै ओहि तापा ।
खिनहि सरग खिन जाइ पतारा । थिर न रहै एहि आगि अपारा ।।

जायसी का प्रेम तत्व विरह गर्भित होने के कारण रहस्यात्मक है। इस की सफलता का रहस्य आत्मदर्शन में छिपा है। इस सफलता को प्राप्त करने के लिए प्रेमी को अन्तर्जगत को पहिचानने की आवश्यकता रहती है यही कारण है कि जायसी के प्रेम में मानसिक तत्व प्रधान है, शारीरिक पक्ष गौण। कवि ने नायक को लोक कर्तव्य की ओर से हटा कर एकान्तिक शुद्ध आदर्श की ओर उन्मुख किया है। इस प्रकार जायसी का ग्रन्थ द्वयर्थक काव्य है जहाँ एक ओर इसमें लोकपक्षीय प्रेम है वहाँ दूसरी तरफ यह मानसिक भी है। इस बात को कवि ने ग्रंथ के अन्त में प्रकट भी कर दिया है।

जायसी ने 'पद्मावत' के अन्तर्गत जहाँ रत्नसेन के पूर्वानुराग का वर्णन किया है वहाँ पद्मावती का नखशिख वर्णन सुनकर मूर्च्छित हो जाता है। मूर्छा से जगकर वह पागल सा होकर बोलता है और योगी के समान कह उठता है—

सोवत रहा जहाँ सुख साखा। कस न जहाँ सोवत विधिराखा ।
अब जिउ जहाँ इहाँ तनसूना । कब लगि रहै परान बिहूना ।।

यह तो बात सर्व विदित और नितांत सत्य है कि जायसी का भुकाव सूफी मत की ओर था जिसमें जीवात्मा और परमात्मा में पारमार्थिक भेद न किए जाने पर भी साधकों के व्यवहार में ईश्वर की भावना प्रियतम के रूप में की जाती है। अतः इस सारे ग्रन्थ की कहानी अन्योक्ति के रूप में है। बीच-बीच में उनका प्रेम-वर्णन लौकिक पक्ष से अलौकिक पक्ष की ओर संकेत करता जान पड़ता है। इसी गम्भीरता के कारण कहीं-कहीं इनके प्रेम की गम्भीरता और व्यापकता अनन्तता की ओर अग्रसर दिखाई पड़ती है। रति भाव का वर्णन सारे साहित्य में प्रधान वर्णन है पर एक प्रबन्ध के भीतर शुद्ध भाव के स्वरूप का ऐसा उत्कर्ष जो पार्थिव प्रतिबन्धों से परे होकर आध्यात्मिक क्षेत्र में ही दिखाई पड़े, जायसी का मुख्य लक्ष्य है

क्या संयोग, क्या वियोग दोनों में कवि प्रेम के उस आध्यात्मिक स्वरूप का आभास देने लगता है। जगत के समस्त व्यापार उसकी छाया में ही प्रतीत होते हैं। वियोग पक्ष में जब कवि तल्लीनता में विलीन होता है तब सूर्य्य, चन्द्र, नक्षत्र सब उसी परम विरह में जलते और चक्कर लगाते दिखाई देते हैं। यद्यपि इस प्रकार के विश्वजनीन विरह की ओर सगुण धारा के भक्तों की प्रवृत्ति दिखाई नहीं देती फिर तुलसी की विनयपत्रिका में इस प्रकार विश्वव्यापी विरह की भावना मिलती है—

> बिछुरे रविससि मन ! नैनन तें पावत दुःख बहुतेरो।
> भ्रमित स्रमित निसि-दिवस गगन महँ तहँ रिपु राहु बड़ेरो।
> यद्यपि अति पुनीत सुरसरिता तिहुँ पुर सुजस घनेरो।
> तजे चरन अजहूँ त मिटत नित बहिनो ताहू केरो॥

इसी शुद्ध भाव में अग्नि, पवन इत्यादि सब उस प्रिय के पास तक पहुँचने में व्यस्त दिखाई पड़ते हैं। सारी सृष्टि उसी परम भाव में लीन होने को बढ़ती जान पड़ती है।

लौकिक सौंदर्य का वर्णन करते करते कवि की दृष्टि किस प्रकार उस चरम सौंदर्य की ओर जा पड़ती है, उस चरम सौंदर्य की कुछ झलक मानों सृष्टि के वृक्ष, पशु, आकाश सबको मिली हुई है।

रत्नसेन का पद्मावती से मिलाने वाला प्रेम-पंथ जीवात्मा को परमात्मा में ले जाकर मिलाने वाले प्रेम-पन्थ का स्थूल आभास है। प्रेम पथिक रत्नसेन में सच्चे साधक भक्त का स्वरूप दिखाया गया है। पद्मिनी ही ईश्वर से मिलाने वाला ज्ञान या बुद्धि है अथवा चैतन्य स्वरूप परमात्मा है जिसकी प्राप्ति करना रत्नसेन का मुख्य उद्देश्य है। इस प्रकार जायसी ने ग्रन्थ के अन्त में सारे पद्मावत कौ ज्ञान गर्भित कर दिया।

तन चित उर मन राजा कीन्हा। हिय सिंघल बुद्धि पद्मिनी चीन्हा।
गुरू सुआ जेहि पन्थ दिखावा। बिन गुरु जगत को निरगुन पावा।
नागमती यह दुनिया धंधा। बांचा सोइ न एहि चित बंधा।
राघव दूत सोइ सैतानू। माया अलादीन सुलतानू॥

इस प्रकार कवि ने आध्यात्मिक दृष्टि से स्पष्टीकरण के लिये अन्योक्ति का आधार लिया है। इसका कारण यह था कि जायसी को लौकिक प्रेम को भगवत्पक्ष में भी घटाना था। इसीलिये ईश्वर के प्रति प्रेम का उदय पहले भक्त के हृदय में दिखाया है। ज्यों-ज्यों प्रेम बढ़ता है भगवान की कृपा दृष्टि में तीव्रता आती जाती है और भक्त भगवान को प्रिय लगने लगता है। यहाँ तक कि पूर्ण प्रेम की दशा आने पर दोनों का सम्बन्ध ऐक्यता में लीन हो जाता है। इस प्रकार प्रेमी बनकर प्रिय होने की यह पद्धति भक्तों की रही है। भक्त की साधना का यही क्रम है।

प्रश्न १४—जायसी के रहस्यवाद पर एक लेख लिखिये।

उत्तर—प्रत्येक सूफी कवि के विषय में अनुमान कर लेना स्वाभाविक है कि वह अपने मत के अनुयायी होने के नाते उन सिद्धान्तों पर पूर्ण विश्वास करता होगा जो इनकी दार्शनिक और आध्यात्मिक साधना के अन्तर्गत आती है। वह उन साधनाओं में यथासम्भव और यथाशक्ति अभ्यस्त भी रहता होगा। इसका कारण यह है कि कम से कम सूफी-प्रेमगाथा के कवियों का यह चरम

लक्ष्य है कि—"मैं अपने मत के सार-स्वरूप प्रेमतत्व का कथारूपक द्वारा प्रतिपादन करूँगा।" अपनी रचनाओं के अन्तर्गत वे न तो कोरे दार्शनिक की भाँति तर्क-वितर्क ही करते हैं और न किसी धार्मिक साधक की भाँति साधना का कोई क्रम ही ठहराते हैं। वे अपने कथा-रूपक की रचना में प्रवृत्त होकर उसकी घटनावलियों को विकसित करते हैं। अपने भिन्न-भिन्न पात्रों की सहायता से कहानी का पर्यवसान कर उसका गूढ़ उद्घाटन कर देते हैं। सूफी कवियों के इस कार्यक्रम द्वारा यह बात स्पष्ट नहीं हो पाती कि उनका निजी अनुभव क्या है तथा वे किस आध्यात्मिक स्तर पर बैठकर अपने संदेश दे रहे हैं। सूफी साधुओं के रहस्यवाद का पता लगाना इनकी रचनाओं में बिखरी हुई कतिपय विचारधाराओं से सम्भव हो सकता है अथवा उनकी प्रतिपादित साधना के द्वारा व्यक्त किया जा सकता है।

सूफियों के रहस्यवाद का वास्तविक स्वरूप उसकी अतीतकालीन पृष्ठभूमि पर आधारित है। पहले यूरोप में प्राचीन यूनानी दार्शनिकों द्वारा प्रतिष्ठित अद्वैतवाद ईसाई मजहब के भीतर रहस्य भावना के ही रूप में लिया गया। रहस्योन्मुख सूफियों और पुराने कैथोलिक ईसाई भक्तों की साधना समान रूप में माधुर्य भाव की ओर प्रवृत्त रही। जिस प्रकार सूफी ईश्वर की भावना प्रियतम के रूप में करते थे उसी प्रकार स्पेन और इटली के भक्त भी करते थे। सूफी भी 'हाल की स्थिति में आकर माशूक से भीतर ही भीतर मिला करते थे उसी प्रकार पुराने ईसाई भक्त भी दुलहिनें बनकर दूल्हे से मिलने के लिये अपने अन्तर्देश में जाया करते थे। इस प्रकार प्रकट होता है कि इनके रहस्यवाद में दो पक्ष अनिवार्य रूप से हुआ करते थे—आत्मा और परमात्मा की एकता तथा ब्रह्म और जगत की एकता। दोनों मिलकर सर्ववाद (Panthesim) का प्रतिष्ठा—"सर्वं खल्विदं ब्रह्म" करते थे। यद्यपि साधना के क्षेत्र में सूफियों और पुराने ईसाई भक्तों, दोनों की दृष्टि प्रथम पक्ष पर ही दिखाई देती है परन्तु भावक्षेत्र में सूफी प्रकृति की नाना विभूतियों की छवि का अनुभव करते हैं।

रहस्यवाद कविता का पुनरुत्थान योरुप के कई नगरों में इसी सर्ववाद के द्वारा हुआ जिसमें ब्रह्म और जगत की एकता का बहुत कुछ आभास मिलता

है। अँग्रेजी कवि शैले और वर्डस्वर्थ के काव्यों में इसी सर्ववाद की झलक दिखाई देती है। ठीक समय पर पहुँच कर यही सर्ववाद कविवर रवीन्द्र की गीताञ्जली में भी फूट पड़ा।

अद्वैतवाद के मूल में एक दार्शनिक सिद्धान्त है--कवि कल्पना या भावना नहीं। अद्वैतवाद मनुष्य के तत्त्व-चिन्तन और बुद्धि-प्रयास का फल है। वह प्रभाव ज्ञान क्षेत्र का है। जब उसका आधार लेकर कल्पना या भावना उठ खड़ी होती है तब उच्चकोटि के भावात्मक रहस्यवाद की प्रतिष्ठा होती है। रहस्यवाद भी दो प्रकार का होता है—भावात्मक और साधनात्मक। हमारे यहाँ साधनात्मक रहस्यवाद हठयोग के अन्तर्गत आता है जिसमें अव्यक्त तथ्यों के साक्षात्कार के लिये साधक को अनेक प्रकार की अलौकिक सिद्धियाँ प्राप्त करनी पड़ती हैं। भावात्मक रहस्यवाद की भी वैसे कई श्रेणियाँ हैं जिसमें किसी एक रहस्यभावना को आधार मान कर भक्त अपनी श्रद्धांजली अर्पित करता है। अद्वैतवाद का प्रतिपादन सबसे पहले उपनिषदों में मिलता है। उपनिषद् भारतीय ज्ञान काण्ड के मूल हैं। प्राचीन ऋषि तत्व चिन्तन के द्वारा ही अद्वैतवाद के सिद्धान्त तक पहुँचते थे। उनमें ज्ञान का उदय बुद्धि की स्वाभाविक क्रिया द्वारा हुआ था। आजकल जैसे काव्य में कोई मार्मिक स्थल आ जाने पर कवि की मनोवृति भावोन्मुख हो जाती है और वह काव्य भावात्मक शैली का अवलम्बन लेता है उसी प्रकार साधक या योगी को गम्भीर तथ्य पर पहुँचते ही भावोन्मेष हो जाता था और वे अपनी उक्ति का प्रकाश रहस्यात्मक अनूठे ढङ्ग से कर देते थे।

गीता के दसवें अध्याय में भी सर्ववाद का भावात्मक प्रणाली से निरूपण हुआ है। वहाँ भगवान की अपनी विभूतियों का निरूपण हुआ है। वह निरूपण रहस्यवादात्मक है। सर्ववाद के आधार पर ही भक्त की मनोवृत्ति रहस्योन्मुख होगी तब वह अपने को जगत के नाना रूपों के सहारे उस परोक्ष सत्ता की ओर ले जाता हुआ जान पड़ेगा। यह प्रकृति के नाना रूपों में उसी का साक्षात्कार करता है। इस प्रकार अवतारवाद के मूल में भी यही रहस्यभावना काम करती है।

भारतवर्ष में इस प्रकार पहले रहस्यवाद ही हठयोग, तन्त्र और रसायन के रूप में प्रचलित था। जिस समय सूफी यहाँ आए, उस समय उन्हें रहस्य की प्रवृत्ति हठयोगी, तांत्रिकों और रसायनियों में दिखाई पड़ी। इसलिये हठयोग की साधना पद्धति का समावेश उन्होंने अपनी रहस्यात्मक-क्रियाओं में कर लिया। पीछे कबीर ने भारतीय ब्रह्मवाद और सूफियों की प्रेम-भावना मिला कर जो निर्गुण 'संतमत' खड़ा किया उसमें भी पिंगला, इड़ा, सुषुम्ना नाड़ी तथा भीतरी चक्रों की पूरी बातें व्यक्त की हैं। इस प्रकार सूफी सन्तों और निर्गुण मत वालों में हठयोगियों एवं नाथ पंथियों की बातें भी मुख्य रूप में आई हैं। अधिकतर रहस्य की प्रवृत्ति तथा ईश्वर को केवल मन के भीतर समझने की प्रवृत्तियाँ अधिक रूप में आयी हैं।

भारतवर्ष में जिस समय इस्लाम के ऐसे सूफी साधू आये, जिन्होंने वेदान्त और साधकों की सत्संग से अपने मार्ग की पुष्टि की उस समय वास्तविक रहस्यवाद की भावना अधिक स्पष्ट रूप में मुखरित हो उठी थी। क्योंकि मुसलमानों का शासन स्थापित हो जाने पर हिन्दू और मुस्लिम समागम के लिए सामान्य भक्ति मार्ग का आविर्भाव हुआ था वह अद्वैती रहस्यवाद को लेकर ही जिसमें वेदान्त और सूफीमत का मेल था। इससे ज्ञात होता है कि रहस्यवाद का पूरा-पूरा स्फुरण सूफी काव्यों में हुआ है जो कुछ थोड़ा बहुत कबीरदास ने रहस्यवाद का विवेचन किया वह सब सूफी सन्तों के प्रभाव में आकर ही किया। इसके अतिरिक्त कबीर पर इस्लाम के कट्टर एकेश्वरवाद और वेदान्त के मायावाद का रूखा संस्कार भी पूरा-पूरा था। उन सन्तों में उसे कहने के लिए वाक्चातुर्य था, पटुता थी और थी प्रतिभा। यदि किसी बात की कमी थी तो वह केवल एक यह थी कि प्रकृति के प्रसार में भगवान की लीला का प्रदर्शन करने के लिये भावुकता नहीं थी जिससे उनके रहस्य वाद को कोरी दार्शनिकता मिली। ये केवल हठयोग और वेदान्त की उच्च-अट्टालिका पर अपने भाव को स्थिर रख पाये। उनमें वह प्रेम की पीर, वह आकुलता और तड़पन नहीं थी जो हमें सूफियों के रहस्यवाद में मिलती है। अतः कबीर में जो कुछ रहस्यवाद है वह सर्वत्र एक भावुक या कवि का रहस्य-वाद नहीं है यद्यपि कुछ एक स्थानों पर कबीर की विरहिणी आत्मा में भी

तड़पन और कसक की कमी नहीं। परन्तु हम कबीर के रहस्यवाद को पूर्णतया रमणीय और सुन्दर रहस्यवाद नहीं कह सकते। यदि पूर्णतया विकसित परिप्लावित और परिमार्जित् रहस्यवाद प्राचीन कवियों में मिलता है वह सूफी ग्रन्थों में ही मिलता है। सूफियों की भावुकता उच्चकोटि की और अनन्य है। जायसी की तड़पती हुई आत्मा समस्त संसार की वेदना को स्वयं में केन्द्रीभूत किए हुए है। सूफियों की भक्तिभावना के अनुसार परमात्मा को प्रियतम के रूप में देखकर जगत के नाना रूपों में उसी प्रियतम के माधुर्य रूप की छाया विद्यमान है। सारे प्राकृतिक व्यापारों और रूपों में "पुरुष" के समागम के हेतु श्रृङ्गार, उत्कण्ठा, विरह, विकलता को अनुभव करना है। सूफी काव्यों में दूसरे प्रकार की भावना अधिक पल्लवित और पुष्पित हुई है।

पद्मावत में रहस्यवाद की छटा जिस ढंग से हुई है मृगावती, मधुमालती आदि में भी इसी प्रकार से हुई है। परन्तु पद्मावत में यह भावना अधिक पुष्ट और परिमार्जित है। इसका कारण यह है कि मृगावती और मधुमालती आदि रचनाएँ पद्मावत के पहले की हैं और पद्मावत की रचना उसके वाद में हुई जिससे रहस्यवाद अधिक सुन्दर रूप से स्पष्ट हो सका। यद्यपि परिपाटी और वर्णनात्मक पद्धति वही है। यदि हिन्दी में पुराने साहित्य में 'रहस्यवादी कवि सम्प्रदाय' कोई कहा जा सकता है तो वह सूफी सम्प्रदाय ही है।

रहस्यवाद के वास्तविक स्वरूप का परिचय किसी कवि की उन पंक्तियों द्वारा ही लग सकता है जिनमें उसने परमात्मा की निजी अनुभूति व तज्जन्य आनन्दादि को व्यक्त किया है। परमात्मा की अनुभूति एक रहस्यमयी वस्तु की अनुभूति है जिसका वर्णन स्वाभावतः अधूरा और अस्फुट हुआ करता है। कबीर के शब्दों में वह प्रेम की अकथ कहानी है जिसका वर्णन "गूँगे के गुड़" की तरह है। अनुभूति की गहराई कवि को इतना तन्मय और तल्लीन कर देती है कि लाख प्रयत्न करने पर भी कवि उसका स्पष्ट और पूर्ण वर्णन नहीं कर सकता। अतः परमात्मा तत्त्व का वर्णन करने वालों ने सदा ही उसे इन्द्रियातीत, अगोचर और अज्ञेय बतलाया है तथा कहा है कि वह केवल

निजी अनुभव की ही वस्तु है तथा अनिवर्चनीय है। चूँकि वह इंद्रियातीत है अतः हमारी इन्द्रियों की साधारण शक्ति इस विषय में काम नहीं करती। सूफी दार्शनिकों ने उसे 'एक' अकेला ही माना है। उसे जगत से भिन्न ठहराया है।

सूफी काव्य के रहस्यवाद की मूल-भावना संक्षेप में इस प्रकार है— उनका कहना है कि मूल वस्तु परमात्मा के प्रति हमारा आकर्षण उसी प्रकार है जिस प्रकार एक प्रेमी का अपने प्रिय पात्र के प्रति होता है। जिस प्रकार दर्शन, चित्र दर्शन, गुण-कथन या प्रत्यक्ष दर्शन द्वारा कोई व्यक्ति किसी के प्रति आकृष्ट रहता है, उसके विषय में कुछ सुन लेने पर उसे प्राप्त करने के लिए उत्सुक एवं अधीर हो उठता है, उसी प्रकार एक साधक भी अपने सद्गुरु व पीर के द्वारा परमात्मा की झाँकी प्राप्त कर उसके विषय में चिन्तन करता हुआ उसकी उपलब्धि के लिए अधीर हो उटता है। वह अपने प्रिय बन्धुओं मित्रों और पारिवारिक जनों का परित्याग करके उसी की धुन में बाजी लगाता है। अपने प्रेमी पात्र को पाने के लिये कठिन साधनाओं में प्रवृत्त हो जाता है। संसार के प्रति पूर्ण वैराग्य को धारण कर लेता है। अन्त में उसे पाकर हर्षित और प्रफुल्लित हो जाता है। दूसरे को अपनी स्थिति का प्रकटीकरण करना चाहने पर भी उस हर्षातिरेक को पूर्ण रूप से व्यक्त नहीं कर पाता। सूफी कवि अपने परमात्मानुभूति का परिचय इस प्रकार सीधे-सादे कथन मात्र द्वारा न करके उसे किसी न किसी प्रेम कहानी के माध्यम से देने का प्रयत्न करते हैं यही उनकी विशेषता है। उनकी कहानी में लोकतत्व होते हुए भी आध्यात्मिक तत्त्व की बाहरी छाप अधिक दिखाई देती है। वहाँ वह पद्मावत का रत्नसेन और पद्मावती नहीं रह जाते, वे आत्मा और परमात्मा का रूप बन जाते हैं।

इनके रहस्यवाद की दूसरी विशेषता विरहानुभूति है, जिसकी उत्कृष्ट रूप रेखा जायसी के पद्मावत में मिलती है। साधक को अपने प्रेमी का जैसे ही संकेतमात्र मिलता है वह उसकी मनोहरता से बरबस आकृष्ट हो जाता है। वह उस अनुपम वस्तु को पाने के लिये तड़प उठता है। इस जिज्ञासा की तृप्ति के लिए वह सत्संग करता है, एकान्त चिन्तन करता है, उसी के स्वरूप

की रूप-रेखा में तमन्य हो जाता है। वह मूलतः अनुभव करता है कि मैं वास्तव में उसी का हूँ, उसी में निहित हूँ। विरह की यह स्थिति प्रेम और प्रेयसी के मिलन में एक अद्भुत और अनुपम आकर्षण ला देती है। विरह की यही कातरता प्रायः प्रत्येक सूफी काव्य में वर्णित है विशेष कर जायसी के पद्मावत में। रत्नसेन सुआ द्वारा पद्मावती के रूप और सौंदर्य को सुनकर मुग्ध हो जाता है और प्रेम-समुद्र के विरह-भौंर में पड़कर गोते खाने लगता है। जायसी के अनुसार "जैसे मधुकोष में अमृत अदृश्य मधु संचित रहा करता है उसी प्रकार प्रेम में विरही का निवास है—

प्रेम माँह विरह रस रसा। मैंन के धर अमृत बसा॥"

अतः मूलतः विरह की एक मूल पदार्थ है जिसमें अमरत्व का गुण विद्यमान है। विरह की तीव्रानुभूति और प्रबल आकुलता को पाकर सूफी कवियों के काव्य सजीव हो उठे हैं।

सूफी कवियों में आया हुआ प्रेम सात्विक और नितान्त शुद्ध है। उसमें अति एन्द्रिकता और वासना की गन्ध नहीं। वह प्रेम ईश्वरोन्मुख प्रेम का प्रतीक है। लौकिकता का बीज उसे कलुषित नहीं कर सका। उनका प्रेम सारे ब्रह्माण्ड के मूलाधार जगन्नियंता के प्रति उद्दिष्ट होने के कारण "परम प्रीति" बनकर सबके हृदयों में एक समान उत्पन्न हो सका है। जिसमें जायसी के अनुसार बिछड़ी हुई आत्मा परमात्मा को मिलने के लिये तड़पती है। राजा रत्नसेन और पद्मावती के द्वारा जायसी ने बताया है कि इनका सम्वन्ध पूर्व निश्चित था। राजा रत्नसेन के बचपन में ही उसकी सामुद्रिक रेखाओं को देखकर पण्डित कह देते थे—

रतन सेन यह कुल निरभरा। रतन जोति मनि माथे परा॥

पदुम पदारथ लिखी से जोरी। चाँद सुरुज जस हो अंजोरी॥

फिर उसी प्रकार उधर पद्मावती की सखी भी स्वप्न-विचार कर कह देती है—

पच्छिउं खंडकर राजा कोई। सो आवा वर तुम्ह कह कोई।

इस प्रकार सूफी प्रेम गाथा में प्रेमियों को कहानी के आरम्भ में प्रायः विरह यातना से अभिभूति कराया है।

सूफी कवियों ने इसके अनन्तर आत्मा और परमात्मा या प्रेमी और प्रेयसी के मिलन के बीच में कई प्रकार की रुकावटों का उल्लेख भी किया है। आत्मा परमात्मा से इसलिए नहीं मिल पाती कि उसके मार्ग में बाधक शैतान या माया है। सांसारिक आकर्षण, धन-वैभव, कुटुम्ब परिवारादि का प्रेम उसे परमात्मा के मिलन में बाधित करता हे। सूफी कवियों ने तो इसी-लिये अपने प्रेमी को योगी और बाधक के रूप में उपस्थिति किया है। और वह साधक पुरुष है। कबीर की तरह आत्मा को स्त्री नहीं बनाया क्योंकि स्त्री इतनी साधना करने में समर्थ नहीं है। मार्ग में अनेक प्रकार के विघ्न, बाधायें, बीहड़ वन, विस्तृत समुद्र, हिंसक प्राणिवर्ग तथा राक्षस आदि से देवी घटनाओं के प्रकोप तक का वर्णन मिलता है। सूफी साधना के अनुसार वे सब विघ्न बाधाएँ सालिक या साधक के दैनिक जीवन के विविध संकटों के रूप में आती है। परन्तु सालिक अपनी धुनि में रत हुए तब तक चलता जाता है जब तक उसे परमतत्व की प्राप्ति नहीं हो जाती। जायसी के पद्मावत में इसी आधार पर रत्नसेन के जीवन में आने वाली कई प्रकार की कठिनाइयों का वर्णन जहाँ तहाँ मिलता है। जिसके पश्चात् वह अपने अभीष्ट की पूर्ति करता है। यहाँ दो व्यक्तियों की भाँति आत्मा और परमात्मा का चिरकाल तक स्थायी मिलन हो जाता है। यहीं पर कवि पाठकों का ध्यान आकर्षित कर देता है। इस प्रकार सूफियों के रहस्यवाद के मुख्य तीन अङ्ग हैं। प्रथम मैं साधक की विरहावस्था की अनुभूति रहती है। दूसरा मध्यवर्ती है जहाँ उसके विविध कष्टों का निरूपण हुआ है। तीसरा अन्तिम भाग वह है जहाँ साधक को अभीष्ट की सिद्ध होती है। इसके अन्य अङ्गों के विषय में प्रायः सभी सूफी साधू मौने हैं। सूफी दार्शनिकों एवं धर्माचार्यों ने अपने सिद्धान्तों और विविध सावनाओं को बड़े ऊँचे स्तर पर सिद्ध करना चाहा है। उनके अनुसार उनका परम लक्ष्य स्वयं परमात्ना है जो 'एक' और 'एकमात्र' सत्य है। जो कुछ भी है सो वही भगवान है जो सभी के भीतर बाहर व्याप्त है।

आध्यात्मिक कथा संगठन की दृष्टि से प्रायः सभी सूफी काव्यों का सुन्दर संगठन हुआ है। पद्मिनी प्राप्ति की साधना ईश्वर प्राप्ति की साधना का प्रतीक बन गई है। जायसी ने पूर्व कथा में विस्तृत रूप से आध्यात्मिक रूपक का आरोप किया है। पूर्व कथा में लोक-कथा और जोगी का अद्भुत संगम है और आज्ञात रूप से अध्यात्म तत्व का आरोप अन्तः सलिला सरस्वती के रूप में हुआ है। यद्यपि सारी कथा लौकिक ही दिखाई देती है परन्तु नायक के महान् प्रयत्न ने प्राण डाल दिये हैं। लक्ष्य-प्राप्ति की कठिनाइयाँ ही सूफी-साधना की गहनता का प्रतीक हैं। इस प्रकार सारी कथा में एक रूपक चलता है। सूफियों ने इसी रूपक को पारलौकिक प्रेम की व्यंजना के रूप में स्वीकार किया है। कवि तो केवल मार्मिक उक्ति के माध्यम से मसनवी कहा जाता है। प्रेम और विरह के सम्बन्ध में मार्मिक उक्तियाँ कहता जाता है। सूफी-साधक के लिए यही मनन एवं साधना की वस्तु है। इसी मन की साधना को सूफियों ने कथा का रूप दे दिया है। इसी सांकेतिक भाषा में कवि कहता है—

तन चित उर मन राजा कीन्हा। हिय सिंहल बुद्धि पद्मिनि चीन्हा।

गुरु सुआ जेइ पन्थ दिखावा। बिन गुरू जगत को निरगुन पावा।।

यहाँ पर कवि ने सालिक के मार्ग में दो प्रकार की बाधाओं को उपस्थित किया है—अकल (मन) नफ्स (नागमती) इस नफ्स द्वारा वह अपने मन चित्तौड़ में ही लीन रहता है। परन्तु जब उसे मुरशिद कामिल (सुआ) मिल जाता है तब वह नफ्स से छुटकारा पा लेता है और 'रूह' में स्थिति 'मुअरिफ' (सहज-बुद्धि) की प्राप्ति की ओर बढ़ता है। नागमती (नफ्स) भी सुन्दर और मोहक है और मुअरिफ (पद्मावती) भी सुन्दर है। नफ्स मुरशिद में विश्वास नहीं रखता। इसलिए उसको मार देना चाहता है। परन्तु जब सालिक ने एक बार मुअरिफ के सौंदर्य को जान लिया अब वह मुड़ नहीं सकता। अतः वह लक्ष्य की प्राप्ति अवश्य करेगा। सालिक के लिये नफ्स और मुअरिफ दोनों ही आकर्षण के कारण बने रहते हैं—जायसी ने दोनों को सुन्दर चित्रित किया है। जायसी ने नागमती के विरह को तो केवल इसलिए प्रस्तुत किया है जिससे भारतीय परम्परा की रक्षा हो सके। इससे

नागमती का विरह वर्णन स्वतन्त्र रूप से है जो प्रेम की पीर को व्यक्त करता है। सूफी परम्परा की सबसे अधिक मार्मिक अनुभूति है। पद्मिनी की प्राप्ति से नागमती के साथ प्रसन्नता पूर्वक रहने का अर्थ केवल यही है कि मुआरिफ का उदय होने पर सालिग नफ्सपरस्ती से हट जाता है। उसकी सभी इन्द्रियाँ ईश्वरोन्मुख हो जाती हैं। सूफी दार्शनिक चिन्तन में माया का कोई स्थान नहीं क्योंकि वह जीव को इधर उधर के आकर्षण में भरमा देता है। वह जीव और ब्रह्म के सम्बन्ध में व्याघात पहुँचाती है। जीव को ऐन्द्रियता की ओर उन्मुख करती है।

पद्मावत में वर्णित रहस्यवाद अद्वैतवाद की पृष्ठभूमि के आधार पर है। अद्वैतवाद के अन्तर्गत दो प्रकार के द्वैत को त्यागा जाता है। आत्मा और परमात्मा के द्वैत को तथा जड़ और जगत के द्वैत को। इनमें सूफियों का अधिक दबाव पहले प्रकार के द्वैत पर है। चतुर्वेद के वृहदारण्य उपनिषद् का "अहं ब्रह्मास्मि" जिस प्रकार ब्रह्म और जीव की एकता और अपरिच्छिन्नता का प्रतिपादन करता है उसी प्रकार सूफियों का "अनहलक" वाक्य भी। इस अद्वैतवाद के मार्ग में बाधक होता है अहंकार। यदि अहंकार छूट जाय तो ज्ञान का प्रकाश हो जाता है। मैं सब कुछ ही हूँ, मुझसे अलग और कुछ नहीं है। जायसी लिखते है—

हौं हौं कहत सब मति खोई। जौ तू नाहिं आहि सब कोई॥
आपुहि गुरू सो आपुहि चेला। आपुहि सब भा आपु अकेला॥

वेदान्त के अनुसार जायसी ब्रह्म और जगत की समस्या पर भी जाते हैं और जगत को ब्रह्म से अलग नहीं करते। जगत की जो अलग सत्ता प्रतीत होती है वह पारमार्थिक नहीं है, अभास या छाया मात्र है—

जब चीन्हा तब और न कोई। तन मन जिउ जीवन सब सोई॥
हौं हौं कहत धोक इतराहीं। जब भा सिद्ध कहाँ परछाँहीं॥

जायसी ने चित् और अचित् की इस अनन्यता के प्रतिपादन के लिए वेदान्त के "विवर्त्तवाद' का आश्रय लिया है जिसके अनुसार जगत ब्रह्म का

कल्पित कार्य है। मूल सत्य ब्रह्म ही है। जो नाम रूपात्मक दृश्य जगत हम देखते हैं वह ब्रह्म का न तो स्वरूप है और न ही कार्य है। वह तो केवल आभास या भ्रममात्र ही है। नित्य और मूल तत्त्व एक ब्रह्म ही है।

इस प्रकार जायसी के पद्मावत में रहस्यवाद की छटा का आभास पूर्वार्द्ध में पूर्ण रूप से मिलता है। यद्यपि कथा लौकिक है परन्तु जायसी ने रूपकों के आश्रय से उसमें अलौकिक आनन्द की प्राप्ति कराई है। अन्य फुटकल सूफी कवियों ने भी अपने काव्य में यदा कदा आध्यात्मिक संकेत किया है। एक सुन्दर आध्यात्मिक जीवन का स्वरूप नैतिक स्तर पर लक्षित होने वाली अनेक बातों पर कराया है। इस प्रकार सूफी प्रेमगाथाओं की प्रतिष्ठा हिन्दी-साहित्य में बहुत है।

प्रश्न १५—महाकाव्य की दृष्टि से जायसी के पद्मावत की समीक्षा कीजिए।

उत्तर—साहित्य की भावनाओं की रागात्मक अभिव्यक्ति का ही नाम साहित्य है। वस्तुतः साहित्य मनुष्य जीवन के 'सत्य' को सुन्दरम् से आवेष्टित कर मानव की सत्ता को "शिवम्" से परिपूर्ण कर देता है। साहित्य का लक्ष्य है 'ब्रह्मसहोदर आनन्द-प्राप्ति'। इस आनन्द की सृष्टि साहित्य के विभिन्न अङ्ग—महाकाव्य, मुक्तक काव्य, उपन्यास, नाटक और कहानी आदि से हो जाती है। आचार्यों ने काव्य के इन अंगों को कई सिद्धान्तों के आधार पर कई प्रकार से विभक्त किया है। ऐन्द्रिक प्रत्यक्षता के आधार पर दृश्य और श्रव्य दो श्रेणियों में काव्य ग्रन्थों का विभाजन हुआ है। कथावस्तु अथवा विषय के आधार पर काव्य के मुख्य भेद तीन किये गये हैं। (१) वर्णनात्मक काव्य—जिसमें किसी प्राकृतिक अथवा मानव रचित दृश्य आदि का वर्णन होता है। (२) प्रबन्धकाव्य अथवा कथात्मक काव्य—जिसमें एक आदर्श रखकर किसी कथा के आधार पर एक कथा लिखी जाती है। इसमें जीवन की घटनाओं का भी सुन्दर शृङ्खलाबद्ध विवेचन होता है। (३) मुक्तक जिसमें

प्राय: ऐसे संगीतात्मक छन्द रहते हैं जिनमें स्वतन्त्र रूप अपने पूर्ण भावों को बिना किसी प्रकार की बाहरी सहायता के व्यक्त किये जाते हैं।

अब हमें देखना यह है कि प्रस्तुत काव्य किस प्रकार का है। मुक्तक काव्य कहने का प्रश्न वहाँ उठता ही नहीं क्योंकि पद्मावत जैसा बृहत्काय और विविध प्रकार की घटनाओं की सुन्दर योजना वाले काव्य को मुक्तक काव्य किसी भी प्रकार से नहीं कहा जा सकता है पद्मावत प्रबन्ध काव्य तो है ही। क्योंकि प्रबन्ध कल्पना पर कुछ और विचार करने से पहले यह देखना आवश्यक होता है कि कवि घटनाओं को किसी आदर्श पर ले जा कर तोड़ना चाहता है अथवा यूं ही स्वाभाविक गति पर छोड़ना चाहता है। यदि कवि का उद्देश्य सत्य और असत्य के परिणाम दिखाकर शिक्षा देना होगा तो वह प्रत्येक पात्र का परिणाम वैसा ही दिखायेगा जैसा न्याय की दृष्टि से उसे उचित प्रतीत होगा।

पद्मावत के कथानक से यह स्पष्ट है कि घटनाओं को आदर्श परिणाम पर पहुँचाना कवि का लक्ष्य नहीं है। यदि उसका ऐसा लक्ष्य होता तो राघव-चेतन का बुरा परिणाम दिखाये बिना वह ग्रन्थ समाप्त न करता। जायसी ने संसार की स्वाभाविक गति का चित्रण किया है जैसे कि अच्छे आदर्श वाले और शुभ कर्म करने वालों का परिणाम आनन्दपूर्ण और बुरे काम करने वालों का परिणाम बुरा ही हो ऐसा कोई निर्दिष्ट नियम नहीं दिखाई पड़ता। जायसी ने न ही किसी सत्यपात्र का बुरा परिणाम ही दिखाया है जिससे चित्त को किसी प्रकार का दुख प्राप्त हो, और न हीं बुरे पात्र की सुख-समृद्धि ही दिखाई है, जिससे पात्र या लेखक के प्रति अरुचि या उदासीनता पैदा हो। कवि की दृष्टि में मनुष्य का पर्यवसान शान्ति एवं अनन्त आनन्द है वह करुण-क्रन्दन से मानव की आत्मा को क्षुब्ध नहीं करना चाहते। राजा रत्नसेन के मरने पर रानी पद्मावती ओर नागमती विलाप नहीं करती हैं अपितु दूसरे लोक में मधुर मिलन के लिए तैयारी में लीन होती हैं। सोलह शृङ्गार करके परलोक की यात्रा के चिता रूपी वाहन पर आरूढ़ होती हैं। यही है जायसी का काव्यादर्श जिसके प्रश्रय पर सारे काव्य की सारी नींव खड़ी गई है। अतः कहना न होगा कि पद्मावत निश्चित रूप से प्रबन्ध काव्य के सभी

गुणों से सुसज्जित है। परन्तु कई काव्याचार्यों ने इसे महाकाव्य की कोटि में रखा है। अतः अब गम्भीरता पूर्वक महाकाव्य के निश्चित लक्षणों के आधार पर पद्मावत को परख लेना अनुचित नहीं होगा।

संस्कृत शास्त्र में महाकाव्य के जो लक्षण मिलते हैं उनका आधार वैज्ञानिक है। संस्कृत साहित्य का काव्यशास्त्र किसी भी दृष्टि से पिछड़ा हुआ नहीं है। अतः पद्मावत की महाकाव्य की दृष्टि से यथासंगत आलोचना उसके द्वारा निर्धारित नियमों पर कर लेनी ठीक होगी।

भारत आध्यात्मिक संस्कृति वाला देश है। ईश्वर वन्दना को यहाँ आध्यात्मिक महत्व दिया जाता है। काव्य-शिक्षा की प्रेरणा और प्राप्ति सभी देवताओं से होती है अतः उनकी स्तुति और वन्दना आवश्यक समझी जाती है। भारतीय कवि सदैव अपनी असाधारण प्रतिभा का श्रेय भगवान को ही देता है जो सबको देने वाला है। अतः भारतीय प्रत्येक महाकाव्यों के आरम्भ में मङ्गलाचरण को आवश्यक समझा गया है। संस्कृत साहित्य के प्रायः सभी कवि मङ्गलाचरण को यथोचित स्थान देते हैं। इस दृष्टि से जायसी ने मुसलमान होते हुए भी भारतीय इस सिद्धान्त की रक्षा की है—पद्मावत का प्रथम खण्ड ही स्तुति खंड हैं। कवि आरम्भ में ही लिखता है—

सिमरौ आदि एक करतारू। जेहि जिउ दीन्ह कीन्ह संसारू ॥
कीन्हेसि प्रथम जोति प्रकासू। कीन्हेसि तेहि पिरीत कैलासू ॥
कीन्हेसि अगिनि पवन जल खेहा। कीन्हेसि बहुतें रंग उरेहा ॥
कीन्हेसि धरती सरग पतारू। कीन्हेसि बरन नरन औतारू ॥

इस प्रकार कवि का मङ्गलाचरण सम्पूर्ण खण्ड तक चलता है। यदि ध्यान पूर्वक देखा जाय तो इसमें मंगलाचरण होना सहज स्वाभाविक है। क्योंकि सूफी सन्त बहुत ही भक्त और निष्कपट साधू थे। उदात्त प्रवृत्ति वाले होने के कारण इनके काव्य में उतनी ही सात्विक भावना पाई जाती है।

महाकाव्य में प्रबन्ध-चारुता की ओर स्पष्ट इङ्गित है। एक महाकाव्य का वृहत्काय होना आवश्यक है उसकी कथा को सर्गों में विभाजित होना चाहिए

जिससे सारे कथानक में सुचारुता की रक्षा हो। आधिकारिक कथा के साथ-साथ प्रासंगिक कथायें भी सुचारु रूप से लाई गई हों। महाकाव्य के इस नियम का सम्बन्ध उसके नियमित रूप विधान से है जो उसे व्यवस्थित तथा पुष्ट करे।

पद्मावत की प्रबन्ध पटुता उसे महाकाव्य की कोटि में लाने के लिए सहायक रूप में कार्य करती है। कथा को नियमित और व्यवस्थित बनाने के लिए कवि ने बड़ी सावधानी ने कार्य किया है! पद्मावत में तीन कथाओं का निर्वाह बड़े सुन्दर और व्यवस्थित रूप से हुआ है।

१—नागमती की विरह कथा (यह लौकिक विरह कथा है जिसमें षट्-ऋतु वर्णन है)।

२— रत्नसेन-पद्मिनी की कथा (लोक कथा जोगियों में प्रसिद्ध और रूपक की त्रिवेणी)।

३—उत्तरकथा (ऐतिहासिक कथा) जायसी ने इस कथा में स्पष्ट रूप से आध्यात्मिक रूपक का आरोप करना चाहा है।

ये तीन कथाएँ एक दम स्वतन्त्र नहीं हैं। जायसी ने विशेष चातुर्य से तीनों कथाओं का गठबंधन कर दिया है। कम से कम पूर्वकथा और उत्तरकथा के रूप में कथा का विभाजन सम्भव है ही। पहली कथा का फलागम पद्मावती की प्राप्ति है। रत्नसेन सन्तति खण्ड में पूर्वकथा समाप्त हो जाती है और नई कथा का आरम्भ होता है। राघव चेतन दूसरी कथा का नायक है उसे खल नायक भी कह सकते हैं। इस कथा में ऐतिहासिक मात्रा अधिक है और आध्यात्मिक रूपक का आरोप भली प्रकार हुआ है।

कथा-संगठन की दृष्टि से दोनों कथाएँ पुष्ट हैं। पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध दोनों पंचसंधियों का पूरा निर्वाह है। जायसी में यदि इतनी प्रतिभा होती कि वह लोक तथा इतिहास की कथा को समुचित रूप से केन्द्रीभूत कर लेते तो कला की दृष्टि से पद्मावत अधिक पुष्ठ दिखाई पड़ता। ऐसा जान पड़ता है कि जायसी ने सारी कथा को एक साथ नहीं लिखा। यदि ऐसा होता तो कथा

अधिक व्यवस्थित और नियमित हो जाती। फिर भी इतना तो कहना पड़ेगा कि कथा का प्रवाह सुन्दर है। वास्तव में जायसी का उद्देश्य प्रेम-पथ का निरूपण है। पूर्वार्द्ध की कथा में प्रेम ही प्रेम है और उत्तरार्द्ध में मानव जीवन की उदात्त वृत्तियों का समावेश किया है। इस दृष्टि से अगर हम पद्मावत का कथा-विभाजन करते हैं तो उसे दो रूपों में किया जा सकता है। १—इतिवृत्तात्मक और २—रसात्मक।

रसात्मक वाक्यों से मनुष्य के हृदय की वृत्तियों में लीनता आ जाती है और इतिवृत से उसकी जिज्ञासा वृत्ति तुष्ट होती है। किसी काव्य में हितोपदेश, कथासरित्सागर, बैताल पच्चीसी जैसा इतिवृत होगा तो वह महाकाव्य या प्रवन्ध काव्य नहीं कहा जा सकता। ऐसी कहानियों से मानव की कुतूहल वृत्ति ही शान्त होती है। काव्य में रसात्मक कथा के आने से हृदय की संतुष्टि होती है। इस दृष्टि से पद्मावत की कथा निश्चित रूप से महाकाव्य की कोटि में रखी जा सकती है। इसके अतिरिक्त कथा सर्गबद्ध भी होनी चाहिए। कम से कम आठ सर्ग हों। पद्मावत के कवि ने इस नियम का निर्वाह करने में किसी प्रकार का अभाव नहीं छोड़ा। पूरा पद्मावत ५७ खण्डों में विभाजित है। कथा का विस्तार इस दृष्टि से बहुत अधिक हो गया है।

महाकाव्य की कथा ख्यात वृत और प्रसिद्ध हो, समाज का अधिकांश भाग जिस कथा को जानता हो, वही कथा महाकाव्य के लिये चुननी आवश्यक है। इस प्रकार महाकाव्य की घर-घर तक पहुँच सहज में ही हो जायगी और उस ख्यातवृत्त के कारण उसमें वर्णित सभी बातें समाज को सुपरिचित और चिरपरिचित लगेंगी जो महाकाव्य को उनके लिये अधिकाधिक बोधगम्य बना लेगी। यदि उसमें कोई अलौकिक या दैवी चमत्कार होगा तो इससे वह कथा अधिक स्वाभाविक, विश्वसनीय और रोचक नहीं रहेगी।

इस दृष्टि से पदमावत की आलोचना करने पर ज्ञात होता है कि 'पद्मावत' का पूर्वार्द्ध सर्वथा काल्पनिक है और उत्तरार्द्ध ऐतिहासिक है। ऐतिहासिक अंश का स्पष्टीकरण टॉड राजस्थान में दिया हुआ चित्तौड़ गढ़ पर अलाउद्दीन के आक्रमण से स्पष्ट है। ऐतिहासिक कथा के तीन केन्द्र हैं।

नागमती, पद्मावती और अलाउद्दीन; सिंघल, चित्तौड़ और दिल्ली। नागमती चित्तौड़ के राजा रत्नसेन की विवाहिता पत्नी है। पद्मावती पहले रत्नसेन की प्रेयसी है फिर विवाहिता। अलाउद्दीन पद्मावती का प्रेमी हैं। परन्तु उसका प्रेम वासनात्मक है। उसके प्रेम ने साधना के मार्ग को पकड़ कर छल और तलवार के मार्ग को पकड़ा है। सिंघल, चित्तौड़ और दिल्ली तीनों ऐतिहासिक स्थान हैं। यह भी सर्व प्रसिद्ध है कि १३०३ में अलाउद्दीन ने चित्तौड़ के राजा लक्ष्मण सिंह पर चढ़ाई की थी। कहना न होगा कि भारतीय वाङ्मय में पद्मिनी और अलाउद्दीन को लेकर जायसी ने यहाँ एक कहानी खड़ी की है। कुछ भी हो यह तो कहना ही पड़ेगा कि पद्मावत की सम्पूर्ण नहीं तो आधी कथा प्रसिद्ध और ख्यातिवृत्त पर आश्रित है। यह घटना प्रायः सभी इतिहास परिचित मनुष्यों के बीच में प्रसिद्ध है। यदि प्रश्न उठे कि इसमें कल्पना का समावेश अधिक है तो भी उत्तर स्पष्ट है क्योंकि कवि कभी सीमा में बँधा नहीं रहता। उसका यह अधिकार है कि कल्पना के माध्यम से अपने काव्य को सरस और सुन्दर बनाये। फिर पद्मावत का काल्पनिक भाग उसकी ऐतिहासिकता में किसी प्रकार का व्याघात नहीं पहुँचाता।

महाकाव्य का नायक धीरोदात्त है जो धार्मिक, प्रतापी, एक पत्नीव्रत और सत्यवादी होता है। दूसरे शब्दों में—नायक अपने देश की संस्कृति का समर्थ प्रतिनिधि होता है। समाज प्रत्येक आदर्श उसी से ग्रहण करता है अतः असाधारण और महान् होना उसके लिए अनिवार्य है। नायक अपराजेय, अलौकिक शक्ति सम्पन्न, धर्म रक्षा में समर्थ होना चाहिए। यदि महाकाव्य का नायक निर्बल, सामर्थ्यहीन और कायर चित्रित किया जायेगा तो समाज उससे क्या शिक्षा लेगा। उसका सामर्थ्यवान होना इसलिये भी अनिवार्य है उसकी विजय धर्म तथा सद्वृत्तियों की बिजय है तथा उसके विरोधी की पराजय पाप की पराजय है। नायक का सद्वंश जात होना इसलिए आवश्यक है कि वह समाज की श्रद्धा का पात्र बन सके। जिससे वह महाकाव्य में अपना सर्वाङ्गीण चित्र उपस्थित कर सके। पद्मावत में काल्पनिक कथा का नायक रत्नसेन ही है और दूसरी कथा के नायक राघव चेतन को हम खलनायक कह सकते हैं क्योंकि उसी ने अलाउद्दीन को बहकाया था और चित्तौड़ की ओर

उसका मुख फेरा। राघव चेतन का व्यक्तित्व काव्य में इतना निखरा हुआ नहीं है। इस पात्र का स्वरूप समाज की उस भावना का पता देता है जो लोकप्रिय वैष्णव धर्म के कई रूपों में प्रचार के कारण शक्ति, तांत्रिकों और वाममार्गियों के विरुद्ध हो रही थी। यदि सामाजिक दृष्टि से देखते हैं तो इसका व्यक्तित्व शेक्सपियर के 'वीनिस नगर के व्यापारी' 'शाइलाक' की तरह का है। वह वृत्ति उग्र और हिंसापूर्ण है। विवेक का शेष मात्र नहीं। वह सब के विरोध में हर एक वात कहने की बाट जोहता रहता है। कथा का दूसरा नायक रत्नसेन है। वास्तव में नायक कहना इसी को उपयुक्त ठहरता है। नायक होने से प्राचीन पद्धति के अनुसार रत्नसेन के चरित्र में आदर्श की प्रधानता है। यद्यपि उसके व्यक्तिगत स्वभाव (अदूरदर्शिता, बुद्धि की अतत्परता, राजपूतों की प्रतिकार वासना) की भी कुछ झलक मिलती है फिर सी उसमें प्रधानता आदर्श-प्रतिष्ठापक व्यवहारों की है। आदर्श गहरे और सच्चे प्रेम का है। अतः प्रेम के अदम्य वेग में उसने जो कुछ भी किया वह साधारण धर्म-नीति की दृष्टि से नहीं किया। प्रेम मार्ग को जानने वाले रत्नसेन को कभी प्रेम का चोर नहीं कहेंगे। उसकी धीरोदात्त वृत्तियाँ—साहस, कष्ट, सहिष्णुता, नम्रता, कोमलता, त्याग आदि हैं। प्रेम-पथ के अतिरिक्त वह दूसरे व्यवहारों को नहीं जानता। इस प्रकार यह वात निर्विवाद सत्य हैं कि रत्नसेन पद्मावत का नायक है जिसके प्रति पद्मावत के पाठकों की अगाध श्रद्धा भी है। महाकाव्य के नायक की उदात्तता रत्नसेन में किसी भी तरह कम नहीं।

महाकाव्य में प्रेम, नगर, यात्रा, सन्ध्या, रजनी, प्रभात, सागर, सरिता, निर्झर, षट्ऋतु, मृगया, युद्ध, रणसज्जा, वन आदि का वर्णन होना आवश्यक है। इसमें पाठक की दृष्टि से उसमें रोचकता बढ़ती है। पाठक स्वयं को उनका ही एक साथी अनुभव करता है। इसके अतिरिक्त तत्कालीन रीति-रिवाज, सामाजिक चित्रण, पहरावा, आभूषणों आदि का वर्णन भी हो जिससे पाठक उस समय विशेष की कला, समाज और रीति-रिवाजों से परिचित हो सके। इस दृष्टि से पद्मावत पूर्णतया महाकाव्य ठहरता है। वस्तु' वर्णन के कौशल ने पद्मावत के इतिवृत को और भी अधिक रोचक बना दिया है। कवि ने सिंहलद्वीप के बगीचों, सरोवरों, बावड़ियों, नगर, पक्षियों, हाठ, गढ़, हाथी,

घोड़ों तक का वर्णन किया है। चित्तौड़ से कलिंग तक जाने के वर्णन में न जाने कितने वन, पर्वत, नदी, निर्झर, ग्राम आदि का चित्रण किया है—

है आगे परवत कै बाटा। विषम पहार अगम सुठि घाटा।
बिच-बिच नदी खोह और नारा। ठाँवहि ठाँव बैठ बटवारा॥

जायसी का प्रकृति वर्णन यद्यपि संवेदनात्मक नहीं तो भी वस्तु वर्णन के अन्तर्गत अवश्य आता है। इसके अतिरिक्त कवि ने आनन्दोत्सव और भोज का वर्णन भी किया है। सजावट का चित्रण, राजा के ऐश्वर्य और प्रजा के उल्लास का आभास भी मिलता है। बरात के आते समय दुलह को देखने की उत्कण्ठा को भी जायसी नहीं भूले। सखियों को लेकर पद्मावती उत्कण्ठा से कोटे पर चढ़कर वर को देखती है—

पद्मावती धौराहर चढ़ी। दहुँ कस रवि जेहि कहँ ससि गढ़ी।
देखि बरात सखिह्न सौं कहा। इन्ह मँह सो जोगी कहं अहा।

इसके अतिरिक्त युद्ध वर्णन, मानव व्यापारों की व्यापकता और शक्तिमत्ता का प्रभाव भी वर्णित है। षट्ऋतु, बारहमासा, उद्दीपन की दृष्टि से लिखा गया है। पद्मावती के रूप सौन्दर्य का वर्णन, सखियों के संग क्रीड़ा करना, परस्पर व्यंग्य कसना, जलक्रीडा करना आदि सभी का वर्णन बड़ा स्वाभाविक और रोचक है।

महाकाव्य या तो पराक्रम-प्रधान हो या प्रेम-प्रधान अर्थात् प्रेम और वीरता, शृङ्गार और वीररस अवश्य हों, शेष रस गौण हों। क्योंकि शृङ्गार रसराज है। इसमें मनुष्य की दुख सुखमयी अनुभूतियाँ सरलतापूर्वक आजायेंगी। इसी प्रकार वीररस जीवन की महानतम उदात्तस्थायी वृत्तियों का द्योतक है। पद्मावत के पूर्वार्द्ध में तो प्रेम ही प्रेम है। नागमती-वियोग शृङ्गार का प्रतीक है और रत्नसेन और पद्मावती संयोग शृङ्गार के प्रतीक हैं। वीर, वीभत्स, रौद्र, शान्त आदि अन्य रस गौण बनकर यत्र-तत्र कथा के रस परिपाक को प्रौढ़ और उदात्त भी बनाते हैं।

महाकाव्य में एक सर्ग में एक छन्द हो। अन्त में छन्द परिवर्तित हो तथा

अन्तिम छन्द अगले सर्ग की कथा की सूचना दे। छन्द परिवर्तन महाकाव्य की कथा का मनोवैज्ञानिक आधार है। पाठक जब पढ़ते-पढ़ते थक जाता है तो अन्त में परिवर्तित छन्द से उसका मन भी चमत्कृत होता है और उसकी उत्सुकता बढ़ती है। पद्मावत में कवि ने दोहा-चौपाई की पद्धति को ही अपनाया है जिसमें रामचरित मानस जैसा महाकाव्य लिखा गया। इसके अतिरिक्त हरिगीतिका, सोरठा, उल्लाला आदि छन्द रुचि परिवर्तन के लिए रख दिये गये हैं।

महाकाव्य की भाषा प्रौढ़, सुव्यवस्थित और परिमार्जित होनी चाहिए जिसे विद्वतमण्डली में बैठा हुआ व्यक्ति बड़े गर्व से पढ़ सके। महाकाव्य की भाषा में जनभाषा का होना अनिवार्य है जिससे काव्य केवल शिक्षित व्यक्तियों का ही विषय न बन सके। रामचरितमानस कितनी प्रौढ़ रचना है फिर भी वह बूढ़े, बच्चे, युवक सबका कण्ठहार है। महाकाव्य की यह विशेषता उसे सर्व युगीन, सर्वकालीन और सार्वजनिक बना देती है। उसे अलंकारों का अजायबघर बना कर जनता के लिए समस्या नहीं बनाना चाहिए। इस दृष्टि से पद्मावत चाहे इतनी प्रौढ़ रचना न हो फिर भी बोधगम्य अवश्य है। जायसी की भाषा ठेठ अवधी थी। इसका अभिप्राय है कि वह संस्कृतपन से हीन थी। जायसी जन-कवि थे। जन-कवि सदैव जनता की भाषा को ही अपनाता है। महावीर और बुद्ध ने संस्कृत को छोड़ पाली और अर्द्ध-मागधी में उपदेश दिया। जायसी अपनी बात को जनता तक पहुँचाना चाहते थे इसलिए उन्होंने संस्कृतगर्भित उच्चवर्ग की भाषा को नहीं अपनाया। यदि वह अपना लेते तो उनका उद्देश्य सफल न हो पाता। उनकी भाषा में ठेठ पूर्वी और अवधी के शब्द हैं जिनसे कुछ अव्यवस्था आ गई है। इतना होने पर भी भाषा लम्बे-लम्बे समासों से हीन और बोधगम्य है। यदि लोक भाषा का मौलिक रूप देखना हो तो पद्मावत ही उसका एकमात्र ग्रन्थ है।

इस प्रकार यदि पद्मावत को प्राचीन शास्त्राचार्यों के बताये हुए नियमों पर कसा जाता है तो यह शुद्ध महाकाव्य ठहरता है। हिन्दी साहित्य में राम-

मानस को छोड़कर इसका स्थान पहला है। कवि ने जिस चातुर्य और प्रतिभा से इसमें कार्य किया है वह अद्वितीय है।

प्रश्न १९—जायसी के प्रकृति-चित्रण पर उद्धरण देते हुए एक लेख लिखिए।

उत्तर—काव्य में प्रकृति-चित्रण करने की प्रवृत्ति परम्परा से चली आ रही है क्योंकि मानव को प्रकृति से विशेष मोह है। सृष्टि के आदि काल से ही जब-जब मानव ने आँखें खोलकर देखा तब तब उसे प्रकृति सुषमा का असीम वैभव दिखाई पड़ा। उसने नक्षत्रों से मण्डित आकाश, वर्षा ऋतु में दौड़ते हुए बादलों और सतरंगी इन्द्र धनुष की छवि को मुग्ध नेत्रों से निहारा और समय पाने पर अभिभूत हृदय की भावनाओं को सुन्दरतम शैली से अतिरंजित करके अभिव्यक्त कर डाला। बस तभी से साहित्य-प्रासाद को प्रकृति सुन्दरी की सौन्दर्य सुषमा से अलंकृत किया जाने लगा। कलाकारों ने प्रकृति सुषमा के चित्रण में अपनी-अपनी रुचि के अनुकूल शैली को अपनाया। किसी ने यथातथ्य चित्रण किया और किसी ने उसके कोमल रूप का। प्रकृति के पुण्य पुजारी पन्त के लिए यह सारी सृष्टि ही सौंदर्यागार है। गुप्तजी उसके यथातथ्य रूप को देखते हैं। प्राचीन कवियों में कबीर ने प्रकृति को प्रतीक रूप में अपनाया, सूरदास ने उद्दीपन रूप में, तुलसी ने कहीं उपदेशात्मक रूप में और कहीं परम्परागत शैली को ही ले लिया। इस प्रकार काल चक्र की गति से भावनाओं में परिवर्तन होने से प्रकृति के स्वरूप वर्णन में भी परिवर्तन आना शुरू हुआ। सारे प्रकृति काव्य में प्रकृति का इतना मर्मस्पर्शी, अतिशयोक्तिपूर्ण, रोमांचक परन्तु ऐश्वर्यशाली वर्णन कहीं नहीं मिलेगा जितना सूफी काव्य में। जायसी के प्रकृति काव्य की तुलना हम अँग्रेजी रहस्यवादी और रोमांटिक कवियों से कर सकते हैं।

सूफी प्रकृति को परमात्मा का प्रतिबिम्ब मानते हैं। इस दृष्टि से प्रकृति उन्हें बड़ी प्रिय है। प्रकृति प्रेम को परमात्मा तक पहुँचने का साधन मानते

हैं जायसी के प्रकृति प्रेम के रूप में निम्नलिखित शैलियों का प्रयोग हुआ है।

१- परिगणन शैली (इस शैली में वस्तु का नाम कथन मात्र ही रह जाता है)।

२—रोमांचक शैली (इसमें वस्तु का अतिशयोक्तिपूर्ण चमत्कारिक वर्णन होता है। साधारण वस्तु को असाधारण और अलौकिक बनाने के लिये इस शैली का प्रयोग हुआ है)।

३—रहस्यवादी शैली (इसमें कवि योग का सूफीमत के आधार पर कोई प्राकृत रूप खड़ा करता है।

४—उपमान शैली (उपमानों के रूप में प्रकृति के अनेक व्यापारों का व्यापक प्रयोग रहता है) इसके कई वर्ग हो सकते हैं—

(क) जहाँ उपमान केवल काव्योपयोगिता की दृष्टि से आये हैं।

(ख) जहाँ उपमान उपदेश देने के लिए या किसी उपदेश को पुष्ट करने के लिये आये हैं।

(ग) नखशिख के प्रसङ्ग में।

(घ) मानवी भावनाओं के वर्णन में।

५—प्रतीक शैली—इसमें कवि प्रकृति की कुछ विशेष वस्तुओं को प्रतीक के रूप में ग्रहण करता है। सूर्य, चाँद, कँवल, भँवरा इत्यादि प्रतीक बराबर पद्मावती और रत्नसेन के लिए प्रयोग में आये हैं। जहाँ कवि अभिधा के अर्थ से हटकर एकदम आध्यात्मिक अर्थों को उपस्थित करना चाहता है, वहाँ वह वर्ण्यवस्तु की जगह कोई न कोई प्रतीक रख देता है।

वस्तुपरिगणन शैली—जायसी ने पद्मावत में वस्तुयोजना द्वारा बिम्ब ग्रहण कराने का और अर्थ ग्रहण कराने का प्रयत्न नहीं किया। इन्होंने जहाँ जहाँ वस्तु वर्णन किया वहाँ-वहाँ पर वस्तुओं, पौधों, वृक्षों और फलों के नाम गिना दिये हैं। केवल वस्तु परिगणन में नवीनता कहाँ तक आ सकती है। यदि ऋतु का वर्णन होगा तो वहाँ पर भी कवि का वर्णन इस प्रकार रहता है—

घन अमराउ लाग चहुँ पासा । उठा भूमि उत लागि अकासा ।
तरुवर सबै मलयगिरि लाई । भई जग छाँह रैनि होइ आई ।
मलय-समीर सोहावनि छाँहा । जेठ जाड़ लागै तेहि माँहा ।
ओही छाँह रैनि होइ आवै । हरियर सबै अकास देखावै ।।

सिंघलद्वीप वर्णन में कवि बगीचों, सरोवरों, कुओं, वावड़ियों, पक्षियों आदि का वर्णन करता है । न जाने कितनी वस्तुओं को गिन-गिनकर जायसी ने स्थान-स्थान पर अपनी ज्ञान बहुलता का परिचय दिया है—

लवंग सुपारी जायफल, सब फर फरे अनूप ।
आस-पास घन इमिली औ घन तार खजूर ।।

खिरनी पाकि खाँड असि मीठी । जामुन पाकि भँवर अस दीठी ।
पुनि महुआ पुअ अधिक मिठासू । मधुजस मीठ पुहुपजस बासू ।

कहीं कहीं जायसी की परिगणना इतनी दूर तक चली गई है कि नीरसता के सिवा कुछ हाथ नहीं लगता ।

आस पास बहु अमृत बारी । फरी अपूर होइ रखवारी ।।
नारङ्ग नींबू सुरङ्ग जँभीरा । औरं वदाम बहु भेद अंजीरा ।।
वल गल तुरंज सदा फरफरे । नारङ्ग अति राते रस भरे ।।
किसमिस सेब फरै नौ पाता । दारिउ दाख देखि मनराता ।।
लागि सुहाई हरफारपोटी । उनै रही केश के धौटी ।।
फरै तूत कमरग औ न्यौजी । राय करौंदा बेर चिरौंजी ।।
सङ्गतरा व छुहारा दीठे । और खजहजा खाटे मीठे ।।

इस प्रकार के प्रकृति वर्णन से जायसी साहित्य में क्या स्थान पा सकते थे । जायसी के काव्य की सबसे बड़ी दुर्बलता यही वर्णन है । चित्तौड़ से कलिंग तक जाने के मार्ग में न जाने कितने वन, पर्वत, नदी, निर्झर, ग्राम नगर तथा भिन्न-भिन्न आकृति के और प्रकृति के वर्णन किये है । जायसी के

प्राकृतिक दृश्यों के साथ जायसी का हृदय मेल नही खाता। जहाँ पर उन्होंने बगीचों और अमराइयों का वर्णन किया है वहाँ केवल सघन शीतल छाया के विचार से किया है। जहाँ उनका वन वर्णन है वहाँ केवल कुश-कण्टकों के भय से या कष्ट और भय के विचार से किया है—

सघन ढाकि वन चहुँदिसि फूला। बहु दुःख पाव उहाँ कर भूला।
झाँखर जहाँ सो छाँड़हु पंथा। हिलगि मकोय न फारहु कंथा।

हिन्दी के कवियों में केवल जायसी ने समुद्र का वर्णन किया है, पर पुराणों के "सात समुद्र" के अनुसरण के कारण समुद्र का प्रकृति वर्णन वैसा होने नहीं पाया। कुछ पद्य अवश्य समुद्र की महत्ता और भीषणता का चित्र खड़ा करते हैं। जैसे—

समुद्र अपार सरग जनु लागा। सरग न घाल गनै वैरागा॥
उठै लहरि जनु ठाढ़ पहारा। चढ़ै सरग औ परै पतारा॥

समुद्र में जीव-जन्तुओं का जो काल्पनिक और अत्युक्त वर्णन जायसी ने किया है उससे सूचित होता है कि उन्होंने किस्से कहानियों में सुनी सुनाई बातें ही लिखी हैं अपने अनुभव की नहीं शायद समुद्र उन्होंने देखा भी न हो।

जायसी ने केवल वस्तुज्ञान और अनुभूति पर ही अपने प्राकृत काव्य का महल खड़ा नहीं किया बल्कि कल्पना से प्रकृति तत्त्वों में परिवर्धन भी करना चाहा। क्षीर-समुद्र, दधि समुद्र, उदधि-समुद्र, सुरा-समुद्र, किलकिला-समुद्र जैसे नये-नये कल्पना के समुद्र जायसी के काव्य में मिलेंगे। किलकिला-समुद्र का वर्णन देखिये—

भा किलकिला अस उठै हिलौरा। जनुअकास टूटै चहुँ ओरा॥
उठे लहर परवत की नाई। फिरि आवें जोजन सो तांई॥
धरती लेह सरग लहि बाढ़ा। सकल समुद्र जानहुँ भा ठाढ़ा॥
नीर होय तर ऊपर सोई। माथे रङ्ग समुद्र जस होई॥
फिरता समुद्र जोज़न सो ताका। जैसे भँवे कोहाँर का चाका॥

इस प्रकार अनेक चमत्कारपूर्ण, कल्पना प्रसूत वर्णन जायसी के प्रकृति काव्य की विशेषता है। प्रकृति-सम्बन्धी ये वर्णन हम रोमांटिक काव्य के अन्तर्गत मानते हैं जिसमें कवि अतिशयोक्ति से काम लेकर किसी अज्ञात लोक की सृष्टि करता है।

ताल-तलाव बरनि नहिं जाहीं। सूझै वारपार किछु नाहीं॥
फूले कुमुद सेत उजियारे। मानहुँ उए गगन महँ तारे॥
उतरहिं मेघ चढ़ेहिं लेइ पानी। चमकहिं मच्छ बीजु के बानी॥

इस प्रकार के वर्णन पद्मावत में बहुत नहीं हैं परन्तु जो हैं वे विशिष्टता प्रदान करते हैं। कुछ वर्णनों में कवि प्रकृति का सजीव चित्रण अङ्कित करता है। मानसरोवर पर पद्मावती के सरोवर पर नहाने का वर्णन कवि ने किया है—

सरवर रूप विमोहा, हिये हिलोरहिं लेइ।
पाँव छुवै मकु पावौं ऐहि मिस लहरेहिं लेइ॥

अलङ्कारों का अधिकतर विधान जायसी की ग्रन्थावली में हुआ है, परन्तु उस विधान के साथ कवि ने प्रकृति चित्रण का पूरा-पूरा लाभ उठाया है। क्योंकि अलंकारों में योजना के लिए उपमेय उपमान जोड़ने में प्रकृतिक उपकरणों की पर्याप्त सहायता मिलती है। कवि की इस विधान में विशेष रुचि अलङ्कारों की ओर नहीं अपितु अनुभूति की सच्ची अभिव्यक्ति करने की ओर है। प्राकृतिक पदार्थों के साथ कवि ने सच्चा सम्बन्ध जोड़ा है। विरह वर्णन में शरीर की स्थिति और मानसिक स्थिति का प्रभाव अवश्य ही प्राकृतिक लताओं और वृक्ष पौधों पर पड़ेगा। उपमानों के रूप में भी जायसी ने प्रकृति वर्णन बहुत अधिक किया है। कदाचित् सारे हिन्दी काव्यों में उपमानों के लिये प्रकृति की इतनी खोज किसी कवि ने नहीं की। जैसे—

जावंत पंखी जगत के भरि बैठे अमराँउ।
आपनि-आपनि भाषा लेहि देइ कर नाव॥

जिसने पावस में अमराइयों पर झुण्ड के झुण्ड पक्षी बैठे हुए देखे हैं वही इस उपमा की सुन्दरता को जान सकता है। तालाबों में काई फटना सबने देखा है परन्तु हृदय की व्यथा बताने के लिये किसने इस उपमा का प्रयोग किया है।

कित कर मुहै नैनभये, जीउ हरा जेहि बाट।
सखा नीर बिछोह जिमि दरकि-दरकि हिय फाट॥

हृदय की व्यथा की इतनी सार्थक उपमा कौन दे सकता है। नागमती अपने दुःख से दुखी है। इसी से वह कहती है—

काह हंसौं तुम मोसौं, किएउ और सै नेह।
तुम सुख चमकै बीजुरी, मोहि सुख बरसै नेह॥

कहीं-कहीं तो प्रकृति के सुन्दर उपमानों द्वारा कवि आकाश पाताल को छान डालता है और इतनी बड़ी बात कहता है कि हमें आश्चर्य होता है। रत्नसेन गजपति से अपने प्रेम की बात कह रहा है।—

सरग सीस धर धरती, हिया सो प्रेम समुन्द।
नैन कौड़िया होइ रहे लेइ-लेइ उठहि सो बुंद॥

आकाश शीश है, धड़ धरती है, हृदय में जो समुद्र हिलोरें मार रहा है, वह प्रेम है। नेत्र कौड़ी मात्र हैं। वे बूंद-बूंद भरकर इस प्रेम समुद्र को कैसे उलीच सकेंगे। कवि ने व्यतिरेक के द्वारा बड़ा सुन्दर चित्रण किया है—

"का सरवरि तेहि देउँ मयँकू। चांद कलंकी वह निकलंकू।
औ चांदहि पुनि राहु गरासा। वह बिनु राहु सदा परगासा॥
सूना सो नाथ कठोर पवाँरी। वह कोमल तिल पुहुप संवारी॥"

कवि रमणीय प्राकृतिक वस्तुयें सामने रखने के लिये इधर-उधर के उपाय खोजता है। खोजने के उपरान्त उसी सौन्दर्य को देखकर स्वतः प्रसन्न होता है, हृदय सौन्दर्य की भावना में मग्न होता है। प्रेमयोगी रत्नसेन के सिंघलद्वीप

में पकड़े जाने पर पद्मावती विरह में अचेत पड़ी है। आँखें नहीं खोलती है। इतने में कवि कल्पना करता है।

"कंवल कली तू पद्मिनी। गइ निसि भयो बिहाघु।
अब न सँपुट खोलसि। जब रे उवा जग भानु॥"

पद्मावती का सौन्दर्य वर्णन करते हुए कवि प्रकृति की पर्याप्त सहायता लेता है। उसका सौन्दर्य सृष्टि व्यापी है। सरोवर के तीरों को सुसज्जित करना, केशों से अन्धकार की घटायें छा जाना प्रकृति को और सौन्दर्यशील बनाता है—

सरवर-तीर पद्मिनी आई। खोया छोरि केस मुकलाई।
औनई घटा, परी जग छाँह।
वेनी छोरि झार औ बारा। सरग पतार होइ अंधिआरा॥

पद्मावती के पुतली फेरने पर स्वर्ग और पाताल में हलचल मच जाती है। पवन के झकझोर से हिलोरे आने लगते हैं। उसके मृदु हास से शुभ उज्वल ज्योत्स्ना सरोवर में विकीर्ण होने लगती है।—

विगसा कुमुद देखि ससि रेखा, भइ तहँ ओप जहं जो देखा।
पावा रूप, रूप जस चाहा, सखि मुख महुँ दरपन होइ रहा।

निःसन्देह जायसी का प्रकृति-सौन्दर्य प्रस्तुत दोहे में प्रस्फुटित हुआ है।

कँवल जो बिगसा मानसर, विनु जल गयउ सुखाइ।
कबहुँ वेलि फिर पलुहै जो पिउ सींचे आइ॥

प्रस्तुत दोहे की प्रसिद्धि इसलिए है कि इसने प्रकृति के एक बड़े मार्मिक दृश्य को विरह की अभिव्यंजना के लिये व्यक्त किया है। ऐसे चित्र तो अनुभूतिमयता की ही उपज हैं। इसमें प्रकृति चित्रण के साथ कवि के विशाल सांसारिक ज्ञान का परिचय मिलता है।

प्रकृति का वर्णन जहाँ प्रेम के हासमय स्वरूप में हुआ है तो वहीं प्रकृति प्रेम के अश्रुमय स्वरूप में भी उद्दीपन के रूप में सहयोग देती रही है। ऐसा

वर्णन न केवल जायसी में बल्कि हिन्दी साहित्य के प्रत्येक कवि के प्रेम वर्णन में मिलता है। प्रकृति के बिना उनका वर्णन अधूरा और नीरस हो जाता है। विरह की ज्वाला में झुलसी हुई नागमती कौए और भौंरे से अपना सन्देश देती है। कितनी मार्मिक व्यंजना है—

पिउ से कहेउ सन्देसड़ा हे भौंरा ! हे काग।
ते धनि विरह जरि मुई तेहिक धूंआ मोहि लाग।

हिन्दी साहित्य में पशु पक्षियों से प्रियतम का पता पूछना, उसे सन्देश देना एक प्राचीन परिपाटी है। परन्तु पशुपक्षियों को विरहिणी के लिए सहानुभूति प्रदर्शित करते कभी नहीं देखा—यक्ष बेचारा रोता पीटता है परन्तु प्रकृति जड़ ही रहती है। राम "हे खग ! हे मृग ! मधुकर स्रेनी तुम देखी सीता मृग नैनी" कहते हैं परन्तु कोई उत्तर नहीं देता। नागमती के विरह से जड़ चेतन सभी द्रवीभूत हो जाते हैं।

फिर-फिर रोव कोइ नहिं डोला, आधी राति विहंगम बोला।
तू फिर फिर दाहै सब पाँखी, केहि दुःख रैन न लाबसि आँखी ।।

कहीं-कहीं विरह में ऊहा लाते हुए कवि प्रकृति पर विरह का प्रभाव व्यंजित करता है—

जेहि पंखी के नियर होइ कहि विरह की बात।
सोइ पंखी जाइ जरि तरिवर होइ निपात ।।

यद्यपि विरह की विशद व्यंजना जायसी की अपनी विशेषता है फिर भी अत्युक्ति अवश्य है। नागमती को विरह के कारण प्रकृति ज्वलन्त अङ्गार के समान दिखाई देती है—

मानहुँ अगिनि के उठहिं पहारा। मो सब लागहिं अङ्ग अंगारा।

+ + +

अथवा

औ सब नखत तराइ जरहीं। टूटहिं लूक धरनि महँ पुरहीं।
जरै सौ धरती ठावहिं ठाऊँ। दहकि पलास जरै तेहि दाऊँ।

नागमती के आँसुओं से सारी सृष्टि भीगी हुई है। वह रोती है। मानों सारी प्रकृति में एक नवीन प्रेरणा का संचार हो जाता है।

कुहुकि-कुहुकि जस कोयल रोई। रक्त आँसु घुँघची बन बोई।
जहँ-जहँ ठाढ़ि होइ बनवासी। तहँ-तहँ होइ घुँघचि के रासी।।

कवि ने बारहमासा का भी वर्णन किया है। कवि ने चैत से वर्णन कर कालिदास के यज्ञ की भाँति "आषाढस्य प्रथम दिवसे", से आरम्भ किया है। क्योंकि रत्नसेन ने गङ्गा-दशहरे को चित्तौड़ से प्रस्थान किया है। रत्नसेन की विदाई के पश्चात् नागमती के हृदय का परिवर्तन शारीरिक और मानसिक चेष्टाएँ किस प्रकार होती हैं, प्रत्येक मास में उसका वर्णन मिलता है—

भा भादों दूभर अति भारी। कैसे भौंर रैन अँधियारी।।
चमक बीजु, घन गरजि तरासा। विरह काल होइ जीउ गरासा।।

\+ \+ \+

सावन बरसा मेह अति पानी। भरति परी हो विरह झुरानी।।
हिय हिंडोल अस डोलै मोरा। विरह झुलाइ देइ झकझोरा।।

\+ \+ \+

पूस जाड़ थर-थर तन काँपा। सुरुज जाइ ढेङ्का दिसि चाँपा।।
कंत कहाँ लागी ओहि हियरे। पंथ अपार सूझ नहि नियरे।।
चकई निस विधुरै दिन मिला। हौं दिन राति विरह कोकिला।।

इसी प्रकार षटऋतु वर्णन में सुख संभोग का उल्लेख अधिक है। प्राकृतिक वस्तुओं और व्यापारों का बहुत कम वर्णन है। दो व्यापारों की एक साथ योजना कवि ने की है। बिजली का चमकना और चमक में बूँदों का सुवर्ण के समान झलकना इन दो व्यापारों की एक साथ योजना देखिये—

चमक बीजु बरसे जल सोना। दादूर मोर सरद सुठि लोना।

यही स्थिति वैसाख के रूपक में वर्णित है—

सरवर हिया घटत निति जाई । टूक टूक होई कै बिहराई ॥
बिहरत हिया करहु, पियु ! टेका । दीठि दवंगरा मेरवहु एका ॥

विदीर्ण होते हुए हृदय को सूखता हुआ सरोवर और प्रिय की दृष्टिपात को दवंगरा बनाकर कवि ने प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण का सुन्दर परिचय दिया है ।

इस प्रकार प्रकृति के चित्रण में कवि की अनुभूति, कल्पना, कवित्व, शक्ति सौन्दर्य आदि सभी कुछ निखर चुका है । हृदय और मन की सारी कल्पना और भावुकता एक ही सूत्र में पिरोकर प्रकृति रूप में सौन्दर्यवती हो उठी है । संसार के किसी काव्य में इस सहृदयता की उपमा नहीं मिलेगी जैसी कि हम जायसी के प्रकृति चित्रण में पाते हैं ।

प्रश्न १७— कबीर और जायसी के रहस्यवाद की तुलना कीजिये ।

उत्तर—हिन्दी साहित्य में रहस्यवाद के सम्बन्ध में विचित्र-विचित्र धारणायें व्यक्त की जा रही हैं । ऐसे-ऐसे कवियों को भी रहस्यवादी कवियों की तरफ ढकेला जा रहा है जो रहस्यवाद से कोसों दूर है । वास्तव में भाव-गम्भीरता, भाषा क्लिष्टत्व तथा विचार जटिलता के कारण अभिव्यक्ति में जो दुरूहता आ जाती है, वह ही रहस्यवाद नहीं । हिन्दी रहस्यवाद का वर्तमान स्वरूप पश्चिमीय प्रतिकृति है । पश्चिमी-रहस्यवाद ज्ञानातीत सत्य के आध्यात्मिक स्वरूप में विश्वास रखता है । भारतीय रहस्यवाद के मूल में अज्ञात शक्ति की जिज्ञासा कार्य करती है । ईश्वर और संसार का सम्बन्ध, संसार की उत्पत्ति, प्राकृतिक परिवर्तन तथा उसकी क्रियाशीलता मनुष्य को आदिकाल से ही मुग्ध किये हुए है । इस मुग्धता में विस्मय और विस्मय में उद्वेगाग्नि जिसके वशीभूत होकर मानव मन सदैव क्षुब्ध और अशांत रहता है सुखापेक्षी मानव उस क्षोभ

और शान्ति से बचने के लिए बाह्य-पार्थिव-जगत के उपकरणों की अपेक्षा अन्तर के वैभव को अधिक महत्व देता है। भारतीय सभ्यता आदिकाल से ही आध्यात्मिक रही है जिससे हमारे सभी अनुसन्धान आध्यात्मिक जगत में ही हुए हैं। ताप, प्रकाश, विद्युत आदि की शक्तियों का अनुसन्धान कर विज्ञान वस्तुवाद की जिस सीमा पर अभी तक पहुँचा है हमारी सभ्यता इससे कोसों दूर आगे भागी जा रही है। कोरी दार्शनिकता का आश्रय पाकर हमारा क्षुब्ध हृदय शांत नहीं होता, अतः हमें अनुभूति की आवश्यकता है जो दर्शन की नीरव और शुष्क मरुभूमि में नहीं मिल सकती। वह मिलती है हमें निर्झरणी की पवित्र धारा में, प्रकृति-कामिनी के सुन्दर और मधुर हास में। रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार—'तर्क और ज्ञान में, या बुद्धिवाद के क्षेत्र में जो अद्वैतवाद है वही कल्पना और भावना के क्षेत्र में रहस्यवाद है।' अद्वैतवाद में केवल बौद्धिक एकता का ज्ञानमात्र होता है परन्तु रहस्यवाद में किसी असीम चेतना के लिए, उससे ऐक्य स्थापित करने के लिए आकुल प्रेरणा होती है।

सांसारिक सुखों की असारता एवं दुखों की प्रबलता से घबराकर प्राणी ऐसे सम्बल को ढ़ूँढ़ने लगता है जो उसे इन सुख-दुःखों से परे किसी अनन्त और अलौकिक आनन्द-सागर में मग्न कर दे। संसार की कटुता से घबराकर ही जीव को परमात्मा का ध्यान आता है। वह अपने आप को अज्ञात शक्ति के इङ्गित पर नाचता हुआ पाता है और वह यह भी अनुभव करता है कि यह अज्ञात शक्ति अखिल ब्रह्माण्ड को परिचालित कर रही है। महान आत्माएँ अपने जीवन के सारे स्रोत उसी शक्ति की ओर प्रवाहित करके उससे एकीकरण प्राप्त करने का प्रयत्न करती हैं। उसके दिव्य प्रकाश, अलौकिक और अनिर्वचनीय सौन्दर्य-शक्ति को देखकर अवाक् रह जाती हैं। अन्य साधनों के अभाव में वे भाषा साधन का अवलम्ब ग्रहण करके रहस्यवादी कवि के रूप में उपस्थिति होती हैं। स्वभावतः उस शक्ति का वर्णन करने में एक प्रकार का धुंधलापन सा आ जाता है। कभी-कभी तो केवल संकेत मात्र ही होता है। इसी असमर्थता को कई कवियों ने गूँगे का गुड़ कहकर ही छोड़ दिया। कबीर ने इसको केवल इन शब्दों में प्रकट किया—

अकथ कहानी प्रेम की कछु कही न जाय ।

गूँगे केरी सरकरा, खाये और मुसकाये ।।

रहस्यवाद का मूल वेदों से बताते हैं । यूँ तो रहस्यवाद की भावना नाथ पंथियों में भी पाई जाती है । किन्तु रहस्यवाद के आदि कवि कबीर ही हैं । डाक्टर श्यामसुन्दरदास के कथनानुसार "कबीर का स्थान रहस्यवादी कवियों में सबसे ऊँचा है, शुद्ध रहस्यवाद उन्हीं का है ।"

वास्तव में रहस्यवाद के मूल में एक वृत्ति काम करती है वह है जिज्ञास-वृत्ति जिसकी तुष्टि के लिए दो रास्ते सम्भव हो सकते हैं—दर्शन का मार्ग और भक्ति का मार्ग । दर्शन उसी जिज्ञासा-वृत्ति की तुष्टि बौद्धिक प्रयत्न के बल पर करता है और भक्ति में ईश्वर प्राप्ति विश्वास, श्रद्धा और प्रेम के बल पर होती है । दर्शन की शुष्क भूमि में बुद्धि प्रधान होने से रहस्यवाद की गुंजाइश नहीं रहती परन्तु भक्ति के क्षेत्र में भी ईश्वर की एक निश्चित रूप में समक्षता होने से रहस्यवाद की कोई स्थिति नहीं रहती । वास्तव में रहस्यवाद का सूत्रपात दो विलक्षण वस्तुओं का सम्मिश्रण है वह है, निर्गुण और भक्ति का, अर्थात् वह ब्रह्म जो अब तक मस्तिष्क के चिन्तन और शुद्ध बुद्धि का विषय था उसे हृदय और भक्ति का आलम्बन बनाया गया । रहस्यवाद के लिए दूसरी आवश्यकता माधुर्य भाव की है । इसके अभाव में रहस्य या रहस्यवाद का कोई प्रश्न नहीं पैदा होता । क्योंकि फिर खोज किसकी की जाये ? किसके लिए ब्यग्रता, उत्सुकता और उत्कण्ठा का प्रश्न पैदा हो ? इसकी पूर्ति के लिए रहस्यवादी कवियों को माधुर्य भाव का आश्रय लेकर दाम्पत्य प्रेम को अपनाना पड़ा । कबीर ने स्वयं को पत्नी माना है जो प्रियतम की खोज में व्यग्र है— "हरि मोरे पीउ हौं राम की बहुरिया ।" इसी प्रकार जायसी ने भी स्वयं को पति और परमात्मा को पत्नी माना है । महादेवी भी सदैव अज्ञात प्रियतम के मिलन के लिये व्यग्र रहती हैं । कहने का तात्पर्य यह है कि विकल व्यग्रता को उत्पन्न करने के लिए, जिज्ञासा का आधार बनाने के लिए पति और पत्नी की या प्रेमी-प्रेयसी की कल्पना की गई क्योंकि इस सम्बन्ध में मिलन की उत्कट अभिलाषा सदैव बनी रहती है ।

महात्मा कबीरदास और जायसी के रहस्यवाद को जानने से पहले यह जान लेना अनुचित न होगा कि रहस्यवाद की नैसर्गिक धारा में अन्य कौनसी धाराओं का समावेश है। ध्यानपूर्वक विचार करने से यह स्वतः ही प्रकट हो जायगा कि रहस्यवाद पर भगवान शंकराचार्य के अद्वैतवाद, मुसलमान सन्तों के सूफीवाद का विशेष प्रभाव है। हठयोग को भी स्थान दिया जाता है।

१—अद्वैतवाद तो रहस्यवाद की आत्मा है। इसके अनुसार आत्मा और परमात्मा के बीच माया ने पर्दा डाल रखा है। उपासना अथवा ज्ञानोपार्जन द्वारा इस माया से छुटकारा पाकर आत्मा और परमात्मा का एक ही तत्त्व होना कबीर ने इस प्रकार प्रकट किया है—

"जैसे जलहिं तरङ्ग तरङ्गिनि ऐसे हम दिखरावहिंगे ॥"

वस्तुतः आत्मा और परमात्मा के मिलन में बाधा माया या अज्ञान के द्वारा होती है। माया शब्द से अर्थ यहाँ सांसारिक आकर्षण, कंचन आदि से प्रेम आदि है। कबीरदास के विचार में माया पिशाचिनी है। वही जीव को सांसारिक आकर्षणों में बाँधे रखती है। अतः वह उसे बहुत बुरा भला कहते हैं—

"माया महा ठगिनि मैं जानी।
तिरगुन फाँस लिये कर डोले, बोले मधुरी बनी ॥"

अथवा

इक डाइन मोरे हिय बसे, निशदिन मोरे हिय को डसे।
या डाइन के लरिका पाँच निसदिन मोहि नचावे नाच ॥

नोट—यहाँ पाँच लड़कों से तात्पर्य काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह से है।

वस्तुतः जीव भगवान् से मिलने के लिए अत्यन्त आतुर है परन्तु मार्ग में सांसारिक मोह माया बाधक है—

मैं जानूँ हरि से मिलूँ मो मन मोटी आस।
हरि बिच डारे अन्तरा माया बड़ी पिशाच ॥

सन्त कवियों ने इस माया को दूर करने का एक ढङ्ग बताया है, वह है ज्ञान का मार्ग—जिससे इसका आवरण दूर हो सकता है। कबीर के शब्दों में—

आँधी आई ज्ञान की ढही भरम की भीति।
माया टाटी उड़ गई लागी राम नाम सों प्रीति॥

इस ज्ञानार्जन तथा उपासना द्वारा माया के नष्ट हो जाने पर आत्मा और परमात्मा का एकीकरण हो जाना कबीर ने इस प्रकार प्रकट किया है।

जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है बाहर भीतर पानी।
फूटा कुम्भ जल जलहि समाना; यह तथ कह्यो ज्ञानी॥

अन्तिम स्थिति आत्मा और परमात्मा के एकीकरण की, तादात्म्यता की आती है जिस समय वह बड़े गर्व से कहती है "अहम् ब्रह्मास्मि" "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या" इस स्थिति में हम रहस्यवाद में वेदान्त के अद्वैतवाद का प्रभाव देखते हैं।

रहस्यवाद का दूसरा मुख्य आधार जायसी का सूफीमत है। इस मत के अनुसार भी आत्मा परमात्मा की तरह खुदा और बन्दे का एकीकरण है। अद्वैतवाद में माया को दोनों के मिलन में बाधक माना गया है परन्तु सूफी रहस्यवाद में शैतान उसके स्थान पर रहता है जो सदैव बन्दे को बहकाता है और खुदा से मिलने नहीं देता। इसलिए कबीर और जायसी दोनों ने ही गुरू को बहुत महत्व दिया है। गुरू पथ-प्रदर्शक है। मनुष्य के जीवन में आने वाली कठिनाइयों का निवारण करता है। कबीर ने इसलिए गुरू-महिमा का वर्णन स्थान-स्थान पर किया है—

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े काके लागों पाय।
बलिहारी वा गुरू की जिन गोविंद दियो बताय॥—(कबीर)

"गुरू विरह चिनगी जो मेला।
जो सुलगाई लेई सो चेला॥" —(जायसी)

गुरू के बिना जीव का प्रेम-पथ दुसाध्य है। प्रेम-पथ पर अनेकों कष्ट झेलने पड़ते हैं। कई प्रकार की साधना और तपस्या करनी पड़नी है। जायसी के सूफीमत के आधार पर—महबूब (प्रेमी) का घर सामने है। किसी मुरशिद (गुरू) के इंगित पर चलकर उस मार्ग की समस्त कठिनाइयों के प्रति कटिबद्ध होकर शरीयत (कर्मकांड) तरीकत (उपासना कांड) हकीकत (ज्ञान कांड) की साधना समाप्त कर 'मुरीद' मारिफत (सिद्धावस्था) प्राप्त करता है जिससे आत्मा को परमात्मा से मिलन होता है तब आत्मा को परमात्मा का अनुभव होता है। तथा 'अनलहक' (सोऽहम्) सार्थक होता है। आत्मा और परमात्मा शराब और पानी की तरह मिल जाते हैं। अतः दोनों प्रतिनिधि रहस्यवादी कवियों ने गुरू को बड़ी प्रधानता दी है। अध्यात्म गुरू ही शिष्य में परमात्मा के प्रति विरह पैदा करता है तथा वह प्रेम पथ पर अग्रसर होता है। गुरू के बिना जीव का पथ दुसाध्य है इस बात को दोनों ने स्वीकार किया है—

चौंसठ दीवा जोई के चौदस चन्दा माहिं।
तेहि घर किसका चान्दना जेहि घर सतगुरू नाहिं॥

सन्त कवियों और सूफी सन्तों के रहस्यवाद की सबसे बड़ी विशेषता उनका प्रेम राज्य है। सूफी साधक प्रेमी होता है। जब उसे यह ज्ञान होता है कि मैं अतीन्द्रिय, अगोचर और अशेष परमात्मा का अंश हूँ तो फिर वह उसे मिलने के लिए आतुर हो उठता है। उसी में स्वयं को खो देता है। उसी लीनता में वह परमतत्त्व की अनुभूति करने लगता है। सूफी कवियों ने यद्यपि प्रेम का मार्ग बड़ा कठिन, कण्टकाकीर्ण और अगम्य बताया है परन्तु 'मुरीद' इसकी कोई परवाह नहीं करता क्योंकि उसका प्रेम विशिष्ट और एक-निष्ठ है। जिसका उसे लोभ है उसके प्रति वह विशेष रूप से उन्मुख है। इस प्रेम के लावण्य का वर्णन सूफी कवि इस प्रकार करते हैं—

तीन लोक चौदह खण्ड, सबै परै मोहि सूझि।
प्रेम छाँड़ि नहिं लोन, जो देखा मन बूझि॥

सूफी कवियों का कहना इस प्रकार है कि—"रहस्यवाद के मूल में एक ही भाव है वह यह कि परमात्मा के प्रति हमारा आकर्षण उसी प्रकार का है

जिस प्रकार एक प्रेमी का अपने प्रिय पात्र के प्रति। जिस प्रकार स्वप्न-दर्शन, चित्र-दर्शन, गुण-कथन या प्रत्यक्ष दर्शन द्वारा कोई व्यक्ति किसी ओर आकृष्ट रहता है, उसके विषय में सुन लेने पर उसकी प्राप्ति की उत्कट इच्छा करता है, उसी प्रकार एक साधक अपने सद्गुरु या पीर द्वारा परमात्मा के साक्षात्कार के लिए अधीर हो उठता है। वह अपने प्रिय बन्धुओं, पारिवारिक जनों, मित्रों आदि को छोड़कर उसी धुन में लीन रहता है। उसे पाने के लिए कठिन से कठिन साधना में लीन रहता है।"

सूफियों के प्रेम का पूर्ण प्रभाव सन्त कवियों पर भी है। अपने प्रियतम से मिलने की उत्कंठा कबीर की विरहिणी आत्मा में सदा बनी रहती है। वह सारे संसार को प्रेम की लाली में रङ्गा हुआ देखती है।

लाली मेरे लाल की जित देखूं तित लाल।
लाली देखन मैं गई मैं भी हो गई लाल॥

कबीर वास्तव में प्रेमोपासक रहस्यवादी (Love-mystic) थे। यदि कबीर का कोमल हृदय तथा काव्य की ऊँची से ऊँची उड़ान देखनी हो तो कबीर की व्यंग्य-उक्तियों, कटूक्तियों या तीखी चोटों के अन्दर न देखें, वरन् इनके प्रेम-निरूपण, विरह-निवेदन में देखें। यह कहने में हमें किंचित भी संकोच नहीं कि कबीर मुख्यतः सुधारवादी थे। वह रूप उनकी परिस्थितियों ने उन्हें दिया। परन्तु वास्तव में कबीर को कवि हृदय मिला था। कबीर की विरहिणी आत्मा की तड़पन में ही बाल-सुलभ, सरलता-सम्भूत एवं भक्ति-विहल हृदय के दर्शन होते हैं। इस प्रेम-राज्य में सन्त कविगण प्रेम की मदिरा में लीन नित्य-व्यापी, चिरस्थायी मादकता में तल्लीन रहते हैं। उन पर पूर्ण आत्म-विस्मृति का शासन रहता है—

हरि रस पीया जानिये, कबहूँ न मिटे खुमार।
मैमन्ता घूमत फिरै नाहीं तन की सार॥

राम नाम के रस को पीकर कबीर इतने मस्त हो गये हैं कि ताने वाने की सुध नहीं रही। उनकी आत्मा विह्वल हो उठी है। कबीर की दृष्टि में इस मदिरा

का मूल्य बहुत अधिक है। आत्मोत्सर्ग की अन्तिम सीमा पर पहुँचकर ही यह प्याला होठों से लगता है—

कबीरा भाटी कुलाल की, बहुतक बैठे आय।
सिर सौंपे सोई पिये, नाहिं तो पिया न जाय॥

कबीर और जायसी दोनों के प्रेम तत्व में विरह का अत्यधिक महत्त्व है। जायसी के शब्दों में जैसे 'मधु कोष में अमृत सदृश मधु' संचित रहता है उसी प्रकार प्रेम में विरह का निवास है—प्रेमहि माँह विरह सरसा। मैन के घर मधु अमृत बसा॥ विरह की मूलतः एक पदार्थ है जिसमें अमरत्व का गुण विद्यमान है। विरह की तीव्रानुभूति और प्रबल आकुलता को पाकर सूफी कवियों का काव्य सजीव हो उठा। कबीर की उक्तियों में भी वही तीव्रानुभूति और आकुलता के दर्शन होते हैं जिसे कबीर की मर्मस्पर्शिनी और मधुर तथा सरल भाषा ने व्यक्त किया है। कबीर की उक्तियों में विरह की जितनी पीर, व्याकुलता, व्यग्रता और छटपटाहट दिखाई देती है उतनी अन्यत्र नहीं। कबीर की उत्कण्ठिता आत्मा सदैव उस दिन की बाट देखती है जिस दिन प्रिय मिलन होगा—

वे दिन कब आवेंगे भाई।
जा कारण यह देह रची है,
मिलवो अङ्ग लगाई॥

विरह के कारण कबीर की आत्मा बड़ी विषम स्थिति में है। रोते-रोते आँखों में झाँई पड़ गई है और नाम पुकारते हुए जिह्वा जल चुकी है:—

आँखड़ियाँ झाँई पड़ीं पन्थ निहारि-निहारि।
जीहड़ियाँ छाला पड्या नाम पुकारि-पुकारि॥

प्रिय-मिलन प्रत्यक्ष में असम्भव है परन्तु इस इच्छापूर्ति के लिए प्रेमी-जन कल्पना में या स्वप्न में उसे बुलाते हैं। कबीर की आत्मा स्वप्न में प्रिय को देखकर आँखें नहीं खोलती कि कहीं प्रियतम ओझल न हो जाये—कितनी

मार्मिक उक्ति है, प्रेम की चरमावस्था यही है। आदर्श प्रेमी इसी प्रकार के होते हैं—

सपने में सांई मिला, सोवत लिया जगाइ।
आँखि न खोलूँ डरपात, मति सपना ह्वै जाई॥

कबीर की विरहिणी आत्मा का यह अनुभव है। जिन्हें विरह का ज्वर एक बार सता चुका है उनके लिए संसार में कोई उपाय नहीं, कोई चिकित्सा या निदान नहीं, सारी आयु इसी प्रकार गल-गलकर ही बिताये—

बिरह बाँण जिन लागियाँ औषधि लागी न ताहि।
सिसुकि-सिसुकि मरि मरि जी उठे कराहि-कराहि॥

वह अपनी उत्कट इच्छा को इस प्रकार प्रकट करती है—

नयना अन्तर आव तू पलक ढाँपि तोहि लेउँ।
ना मैं देखूं और को ना तोहि देखन देउँ॥

वह अपने प्रियतम का स्वागत् पूर्ण रूप से करना चाहती है। संसार के अन्य स्थान उसे रुचिकर नहीं। केवल नेत्रों में ही उसकी छबि को बिठाना चाहती है—

आँखिन की कर कोठरी पुतरिन पलंग बिछाय।
पलकन का चिक डारिके पिय को लिया रिझाय॥

अद्वैतवादी लोग यह मानते हैं कि जीव उसी ब्रह्म का अंश है अतः जैसे ही वह माया के आवरण में पड़कर परमात्मा से अलग होता है तभी से उसकी विरह व्यथा आरम्भ होती है। इसलिए यह संसार भक्त के लिए निरन्तर विलाप ही है। अतः प्रियतम का पाना सहज नहीं, जिसने भी प्राप्त किया, रोते-रोते ही किया—

हंसि हंसि कन्त न पाइये, जिन पाया तिन रोय।
जो हंसि ही हरि मिले, तौ न दुहाहिनी होय॥

इस प्रकार कबीर की अक्खड भाषा भी इस प्रेम राज्य में आकर मधुर हो उठी है। नैसर्गिक कवि की स्वयंभू प्रतिभा का यह मुख्य लक्षण है कि वह यथावसर बिना प्रयास ही उपयुक्त रूप धारण कर लेती है। जायसी की माधुरी से कबीर की कविता कुछ कम नहीं—

यह तन जारौं मसि करौं लिखौं राम की नाऊँ।
लेखनि करौ करंक की लिखि लिखि राम पठाऊँ।

प्रेम के राज्य में जायसी की कविता सराबोर है। विरह की तीव्रानुभूति जायसी के काव्य में भी परमावश्यक है। परमात्मा के सौन्दर्य की एक झलक मात्र ही आत्मा के हृदय में विरह की चिनगारी प्रज्ज्वलित कर देती है। वह एकान्त चिन्तन, सत्संग एवं गम्भीर विचार द्वारा उसके मिलन की रूपरेखा तैयार करती है। वास्तव में विरह में अमरत्व का गुण है, वही प्रेम साररूप है। सूफियों द्वारा वर्णित प्रेम ईश्वरोन्मुख प्रेम का प्रतीक है और विश्व मूलाधार के प्रति उद्दिष्ट होने से चरम प्रीति के रूप में सभी के हृदय में उत्पन्न हो सकता है। सूफियों के अनुसार वियुक्त जीव ने विरह व्यथा अनिवार्य है।

सूफी काव्य में प्रेम के पथ में बाधाओं का होना अनिवार्य है। प्रेमी के मार्ग में अनेक दैविक और सांसारिक बाधाएँ आती हैं। नदी, वन, पर्वत, हिंसक जन्तु आदि के अतिरिक्त संसार के प्रलोभन भी उसे आकृष्ट करते हैं किन्तु वह सबकी अवहेलना करता हुआ आगे बढ़ता है। जब तक उसे उस शुभआलोक के दर्शन नहीं होते वह आगे बढ़ता ही जाता है।

प्रेम के पथ में सूफी कवियों ने सप्त सोपानों की कल्पना की है। जिन्हें वे 'मुकामात' कहते हैं। पहली दशा में प्रेम का भाव जागृत होता है। दूसरी अवस्था विरह की जननी होती है। तीसरी चित्तवृति निरोध की होती है। चतुर्थ सोपान पर ज्ञान प्राप्त होता है। पाँचवी दशा तन्मयता की होती है। छठी में वह सत्य के निकट पहुँचता है और सातवीं में एकाकार या मिलन हो जाता है। इनको क्रमशः अबूदिया, इश्क, जहद, वल्द, हकीक और वस्ल कहते हैं। और वस्ल प्रेम की अन्तिम स्थिति है जहाँ पर बन्दे और खुदा का

एकीकरण होता है। इस प्रकार सूफी रहस्यवाद के तीन अङ्ग। १—विरहावस्था, २—प्रयत्नावस्था, ३—मिलन की अवस्था। यहीं आकर रहस्यवाद की रहस्यात्मक अनुभूति रहस्यमयी वाणी द्वारा अभिव्यक्त होकर रहस्यवाद का रूप धारण कर लेती है।

जायसी के काव्य में सूफी रहस्यवाद की पूर्ण छटा है। परन्तु जायसी भारतीय कवि थे। भारतीयता का पूर्ण प्रभाव इनके ऊपर था अतः अद्वैतवादी विचार धाराओं से भी यह पूर्णतया प्रभावित हैं। प्रकृति पदार्थों में जायसी ने ईश्वरी सत्ता स्वीकार की है जिसे कि भारतीय कवि भी मानते हैं। उन्होंने प्रकृति के कण-कण में परोक्ष सत्ता और सौन्दर्यमयी ज्योति का रूप देखा है।

रवि ससि नखत दिपहिं ओहि जोती। रतन पदारथ मानक मोती।
जहँ जहँ विहँसि सुभावहिं हंसी। तहँ तहँ छिटकि ज्योति परगसी॥
नयन जो देखा कंवल भा, निरमल नीर सरीर।
हँसत जो देखा हँस भा, दसन जोति जग हीर।

जिस समय जायसी की विरहिणी आत्मा को भगवान का आभास होता है उस समय उसे समस्त लोक में, पृथ्वी से आकाश तक विरह तत्व ही दिखाई देता है। वह साँयकालीन तथा प्रातःकालीन लाली में भी उसी विरहाग्नि की लपटों को ही देखता है। इह विरह की चरमानुभूति मन-मन्दिर में प्रिय के सामीप्य को दृष्टिगत कराती है—

देखि मानसर रूप सोहावा। हिय हुलास पुर इन होइ छावा।
भा अन्धियार रैन मसि छूटी। भा भिनुसार किरन रवि छूटी।
चँवल विगस तब विहँसी देही, भवर दसन होये कै रस लेही॥

विरहाग्नि की तीव्रता में उसको पर्वत भी आग के समान दिखाई देते हैं—चन्द्र भी जलता हुआ गोला लगता है—

मांनहुँ अगिन के उठे पहारा। मो सब लागहिं अङ्ग अङ्गारा।

विरह की चरमावस्था देखनी हो तो नागमती की छटपटाती हुई आत्मा की इस युक्ति में देखिए—कौन सहृदय है जो इस पद को सुनकर उछल नहीं पड़ेगा—

यह तन जारौं छारकै, कहौं कि पवन ! उड़ाय ।
मकु तेहि मारग उड़ि परै, कंत धरै जहँ पाँव ।।

इस प्रकार वेदान्त की पृष्ठभूमि पर आधारित अद्वैतवाद का दूसरा रूप रहस्यवाद भारतीय अध्यात्मवाद का प्रतीक है। इस रहस्यवाद ने नैसर्गिक ज्ञान का निरूपण किया अतः साधारण व्यक्ति मानव भाषा के अपर्याप्त शब्दों के माध्यम से उस ज्योति कथन और वर्णन करने में असमर्थ है।—

ज्यों गूंगे के सेन को गूगा ही पहचान ।
ज्यों ज्ञान के सुक्ख को ज्ञानी होय सो जान ।।

रहस्यवाद हमारी ईश्वरोन्मुख चेतना है, कोई मद्यप का अनर्गल प्रलाप नहीं। यह दया-द्रवित महात्मा के हृदय से लोकोपकार के लिए निकला हुआ रहस्यात्मक निर्भर है, जिसका पानकर जनता अपने सुख सौभाग्य को सराहती है। आगे चलकर इन्हीं कवियों का अनुसरण कवीन्द्र रवीन्द्र, महादेवी प्रसाद आदि ने किया। यदि आज की रहस्यवादी कविताओं का विश्लेषण किया जाये तो उसमें कबीर और जायसी की पुनीत और अमरवाणी के कणों की आभा दिखाई देगी।

हिन्दी साहित्य के विकास पर प्रभाव

हिन्दी-काव्य-धारा में रहस्यवाद के दर्शक सर्वप्रथम भक्तिकाल में होते हैं। जायसी और कबीर रहस्यवाद के आदि कवि हैं। डा० श्यामसुन्दरदास कबीर को हिन्दी का सर्वप्रथम रहस्यवादी कवि होने का श्रेय देते हैं और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जायसी में शुद्ध भावात्मक रहस्यवाद के सर्वप्रथम दर्शन करते हैं। यद्यपि भारतीय प्राचीन वैदिक ग्रन्थों में रहस्यवाद के दर्शन होते हैं, किन्तु हिन्दी में सर्व प्रथम रहस्यवाद की झांकी कराने का श्रेय इन्हीं दोनों महाकवियों को प्राप्त है। आचार्य शुक्ल के शब्दों में—"जो चिंतन के क्षेत्र में

अद्वैतवाद है, वही भावना के क्षेत्र में रहस्यवाद है।" उपनिषद्काल का 'सर्ववाद' ही हिन्दी साहित्य में रहस्यवाद के नाम से प्रतिष्ठित हुआ, जिसकी फारसी शैली के आधार पर नींव पड़ी । ब्रह्म तथा जीव को दाम्पत्य–प्रेम में बद्ध दिखाकर उनका स्थायी मिलन कराना इसकी प्रमुख विशेषता रही हैं, जिसका परवर्ती कवियों की रचनाओं पर यथेष्ट प्रभाव पड़ा । कबीर से पूर्व अव्यक्त और अशरीरी ब्रह्म के साथ प्रणय की भावना नहीं थी । कबीर के उपरान्त मीरा में इस प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं। उनकी भक्ति भावना और सन्तों की रहस्य साधना में कोई विशेष अन्तर नहीं है । तुलसी के भी "केशव कहि न जाय का कहिये" जैसे पदों में रहस्य-भावना मिल जाती है। सगुण भक्तों में स्पष्ट रूप से रहस्यवाद के दर्शन नहीं होते मीरा के अतिरिक्त रीतिकालीन कवियों में ताज, रसखान, घनानन्द आदि में भी रहस्यात्मक उक्तियाँ मिलती हैं। पर वास्तविक रहस्यवाद कबीर और जायसी के उपरान्त केवल आधुनिक कवियों में ही मिलता है। इन कवियों में प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी, रामकुमार वर्मा आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। इनकी विचारधारा भारतीय होते हुए भी उनकी अभिव्यक्ति पर कवीन्द्र रवीन्द्र द्वारा अंग्रेजी काव्य का अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा है। इनमें सूफियों की सी मादकता न होकर भी उच्चकोटि की भावुकता है ।

रहस्यवाद का मूल स्रोत वेद हैं। काल्पनिक रहस्यवाद का वह रूप जो जायसी और कबीर में मिला, महादेवी में आत्म निवेदन के रूप में व्यक्त हुआ। पंत में वह अत्यन्त स्थूल रहा, निराला में दार्शनिक परिधान धारण किये रहा और प्रसाद में 'आनन्दवाद' बन गया। वस्तुतः रवीन्द्र के काव्य से खड़ी बोली के रहस्यवादियों ने प्रेरणा ग्रहण की। रहस्यवादी पद्धति का पथ-प्रदर्शन आधुनिक युग में सर्वप्रथम रवीन्द्र बाबू ने किया। पंत ने उन्हीं के स्वर में स्वर मिलाया, किन्तु महादेवी, निराला, प्रसाद ने अपने रहस्यवादी काव्य पथ को स्वयं प्रशस्त किया। प्रसाद ने जिस 'आनन्द शिखिर' की ओर संकेत किया; महादेवी ने जिस 'चिर सुन्दर' की मोहकता को सम्मुख प्रस्तुत किया, पंत ने जिस 'सांस्कृतिक-स्वप्न' को काव्यात्मक अभिव्यक्ति प्रदान की, वह 'स्वप्न' मानवता की पूर्णता के रूप में परवर्ती कवियों ने ग्रहण किया।

जायसी और कबीर के पश्चात सूर तुलसी में रहस्यवाद का पुट मिलता है। उनकी देखा देखी अन्य सगुणोपासक कवियों ने भी इसको आंशिक रूप में ग्रहण किया। रीतिकाल के प्रमुख कवि बिहारी भी इससे अछूते न रह सके। रहस्योक्तियाँ प्रायः प्रत्येक कवि ने अल्पाधिक मात्रा में व्यक्ति की हैं। किन्तु वास्तविक रूप से कबीर और जायसी के पश्चात् रहस्यवाद की पूर्णाभिव्यक्ति आधुनिक कवि प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी आदि में ही मिलता है। आधुनिक कवियों के रहस्यवाद में भारतीय दार्शनिक विचारधारा, सूफीवाद तथा पाश्चात्य मिस्टिसिज्म का अद्‌भुत समिश्रण है। प्राचीन रहस्यवादी कवि साधक होने के साथ-साथ सन्त भी थे, इसलिए उनकी साधना एक अलौकिकता लिए हुए है। संसार की माया, विषय-वासना, आदि विकारों का पूर्ण परित्याग कर वे इस साधना के मार्ग को अपनाते थे उनकी भावना उनकी व्यक्तिगत अनुभूति का आधार लेकर चलती थी। अतः उनका मार्ग निश्चित था। कबीर, सूर, जायसी, मीरा आदि ऐसे ही साधक थे। इन संत कवियों के जैसे निष्कपट, निर्मल हृदय थे, वैसी ही उनकी भावनाएँ भी निर्मल हैं। प्राचीन रहस्यवादी कवियों की कविता में शृङ्गार का नितान्त अभाव है। जायसी और कबीर के रहस्यवाद का हिन्दी साहित्य के विकास पर स्तुत्य प्रभाव पड़ा किन्तु आज का कवि बुद्धिवादी होने के कारण वर्तमान रहस्यवादी कवियों की रचनाओं में अस्पष्टता, धूमिलता, नीरसता, शृङ्गारिकता आदि दोष आ गये हैं। उनमें वास्तविक अनुभूति का अभाव है। कारण, आधुनिक रहस्यवादी कवि अपनी वाणी में व्यक्तिगत अनुभूति नहीं अपितु समष्टिगत अनुभूति व्यक्त करना चाहता है। बुद्धिवादी कवि ने प्रकृति को अतृप्त काम-वासना की तृप्ति का साधन मात्र माना है। इसलिए आज कवियों की रहस्यानुभूतियाँ लौकिक शृङ्गार से पूर्ण हैं।

आज का कवि रूढ़िवादी भी बनता जा रहा है। काव्य में बुद्धिगतवाद की प्रधानता है। कुछ रहस्यवादी कवि प्रगतिवाद की ओर झुक गये हैं। रहस्यवादी काव्य में प्रायः रूढ़ियाँ घर कर गयी हैं। यथा—वासनात्मक, प्रणयोद्‌गार, अतृप्त-व्यंजना, अवसाद, विषाद, नैराश्य आदि की उद्दात्त भावना वेदता, विवृत्ति, सौन्दर्य संघटन इत्यादि। फिर भी तात्त्विक दृष्टि से देखने पर

यह स्पष्ट है कि रहस्यवाद ने हिन्दी साहित्य को एक शान्तिप्रदायिनी जीवन दायिनी आदर्श विचारधारा प्रदान की है, जो निराश हृदयों को आशा, दुखियों को सुख, भूले हुए प्राणियों को गन्तव्य मार्ग पर चलने के लिए दिव्यालोक प्रदान करती है। इसकी दिव्य सुरभि से हमारा समूचा साहित्य सुवासित हो रहा है। आज भी अनेक कवि अपनी काव्य-गङ्गा द्वारा हमें अनमोल रत्न प्रदान कर रहे हैं जिसमें हम सत्यं शिवं सुन्दरम् की झाँकी पाते हैं। अतः रहस्यवादी साहित्य मानव-जीवन को सार्थक, साभिप्राय तथा सफल बनाने का मूल मन्त्र है।

उपर्युक्त विवेचन के पश्चात हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जायसी और कबीर के रहस्यवाद का हिन्दी-साहित्य के विकास पर अक्षुण्ण प्रभाव पड़ा है। आज भी अनेक कवि अपनी रहस्योक्तियों द्वारा काव्य सृजन कर साहित्य के भण्डार को भर रहे हैं। रहस्यवाद की निर्मल धारा आज कई रूपों में प्रवाहित हो रही है। कविगण उसमें स्वयं मज्जन कर संसार को अमृत प्रदान कर रहे हैं।

प्रश्न १८—"कबीर ने केवल भिन्न प्रतीत होती हुई परोक्ष सत्ता की एकता का आभास दिया था। प्रत्यक्ष जीवन की एकता का दृश्य सामने लाने की आवश्यकता बची थी। यह जायसी द्वारा पूरी हुई।" इस कथन में अभि-व्यक्त तथ्य को ध्यान में रखते हुए जायसी तथा कबीर का तुलनात्मक विवेचन कीजिए :

उत्तर—कबीर और जायसी दोनों ही भक्त कवि थे। जिस युग में कबीर का जन्म हुआ था, वह अत्यन्त पाखण्ड, कर्मकाण्ड, परस्पर कटुता, द्वेष, कलह, और वैमनस्य का युग था। तभी कबीर ने हिन्दू और मुसलमान दोनों को खरी खोटी सुनाने की आवश्यकता का अनुभव किया। कबीर योगी सन्त थे, पर जायसी अत्यन्त भावुक और सूफी कवि। जहाँ कबीर में अक्खड़पन है, वहाँ जायसी में भोलापन और सहृदयता। कबीर और जायसी दोनों भक्तिकाल

की निर्गुण विचार धारा के प्रतिनिधि कवि हैं। कबीर निर्गुण शाखा में ज्ञान मार्ग का प्रतिनिधित्त्व करते हैं और जायसी प्रेम मार्ग का था। कबीर को डाटना-फटकारना इष्ट है, किन्तु जायसी केवल प्रेम की पीर को लेकर चलने वाले व्यक्ति हैं। आत्माभिव्यंजन में कवीर उनसे वहुत पीछे हैं, साधना के क्षेत्र में दोनों में पर्याप्त मतभेद है। कबीर ईश्वर भक्ति में भारतीय वेदान्त एवं परम्परा को मानते हैं तथा जायसी सूफी मत को। उनमें सैद्धान्तिक मतभेद है कबीर आत्मा की नित्यता को मानते हैं, जायसी नहीं। भौतिकवाद से रहित भारतीय ब्रह्मवाद को ग्रहण करने वाले कबीर पर जीवात्मा, परमात्मा और जड़-जगत् तीनों से भिन्न सत्ता मानने वाले भौतिकवाद से युक्त एकेश्वरवाद का प्रभाव नहीं पड़ा। वे चैनन्य के अतिरिक्त और किसी का अस्तित्त्व स्वीकार नहीं करते

कबीर दास का समय राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक उथल-पुथल का समय था। कबीर ने जन्म भर हिन्दू और मुसलमानों के आचार-धर्म की निन्दा की और उसे ढोंग वताकर वे दोनों जातियों के कोपभाजन भी वने। प्राय: सभी मुसलमान शासक अपने धार्मिक विचारों के सम्वन्ध में इतने रूढ़ और कट्टर रहे हैं कि इस्लाम-धर्म के विरुद्ध किसी प्रकार का आक्षेप या विरोध उन्हें सह्य नहीं था। उस समय एक विचित्र प्रकार की अमर्यादित आत्मश्लाघा, अकर्मण्यता और उच्छृङ्खलता समाज में परियाप्त थी। कर्मकाण्ड और बाह्य धर्माचार का बोलबाला था। हिन्दुओं में शैव, शक्ति, वैष्णव आदि इतने मत मतान्तर और सम्प्रदाय हो गये थे, और उन मतों और सम्प्रदायों में भी इतने विलक्षण परस्पर विरोधी आचार स्थिर हो गये थे कि उनके दार्शनिक और व्यावहारिक पक्षों के संघर्ष से सर्वसाधारण अपना मार्ग स्थिर नहीं कर पा रहे थे। सत्य निष्ठापूर्ण कर्मकाण्ड को भी लोग सन्देह और उदासीनता के साथ त्याज्य समझने लगे। केवल हिन्दुओं में ही नहीं, मुसलमानों में भी रोजा, नमाज, हलाल, पीरों की पूजादि अनेक ऐसे कार्य हो रहे थे, जो हिन्दुओं के तीर्थ, व्रत, देवी-देवताओं की पूजा, छापा जप और माला इत्यादि के समान धर्म के वाहरी आचार मात्र थे। उपासना की जिस सात्विक भूमिका से मनुष्य की सत्य शुद्धि प्रारम्भ होती

है, वहाँ ब्राह्य आचार भी सात्विक और शुद्ध रहता है, किन्तु जब उसमें प्रदर्शन का तत्त्व आ बैठता है, तब उसकी सात्विकता भी सन्देहपूर्ण हो जाती है, यही दशा उस समय हुई। आचार मूलक धर्म के कारण मानसिक शान्ति और सत्य शुद्धि करने के बदले हिन्दू और मुसलमान दोनों ने पारस्परिक वैर और कलह के लिए अखाड़े बना लिए, जिनमें अन्धपूर्ण धर्मान्धता इतनी प्रविष्ट हो गई थी कि उसका निराकरण करना प्रत्येक समझदार व्यक्ति का कर्तव्य हो गया था। इसके लिए कबीरदास अग्रणी समझे जाते हैं। उन्होंने हिन्दू और मुसलमान दोनों को फटकारा—

अरे इन दोउन राह न पाई।
हिन्दुन की हिन्दुआई देखी, तुरकन की तुरकाई॥

मुल्ला और ब्राह्मण की भी खूब खबर ली और पाखण्डी सन्त-फकीरों को भी ललकारा। जायसी इस प्रवृत्ति से सदैव दूर रहे। उन्होंने न किसी को बुरा-भला कहा और न किसी की निन्दा की।

जायसी से लगभग सौ वर्ष पूर्व ही कबीर आदि सन्त कवि हिन्दू-मुसलमानों के मतभेदों को दूर करने का प्रयत्न करते हुए "राम-रहीम" की एकता का प्रतिपादन कर चुके थे। फलस्वरूप हिन्दू और मुसलमान दोनों सम्प्रदाय एक दूसरे की धार्मिक एवं प्रेम कथाओं तथा रीति-रिवाजों में रुचि लेने लगे थे और परस्पर एक दूसरे के सामने अपना-अपना हृदय खोलने लगे थे और एक-दूसरे के हित-अहित की बात सोचने लगे थे। हिन्दुओं की भगवद्भक्ति एवं सूफियों का 'इश्क हकीकी' दोनों ही मार्ग उसी अव्यक्त ब्रह्म की प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील थे। इस प्रकार धार्मिक एकता की संभावना प्रकट होने लगी थी। हिन्दुओं का शाक्त मत और बौद्धों का वाम मार्ग इस वैष्णव भक्ति का विरोध कर रहे थे। वैष्णवों की अहिंसा से प्रभावित होकर मुसलमान भी माँस-भक्षण को बुरा समझने लगे थे। इस प्रकार समाज में एकता की भावना बढ़ रही थी। हिन्दू और मुसलमान दोनों के बीच 'साधुता' का सामान्य आदर्श प्रतिष्ठित हो गया था।

ऐसे समय में कुछ भावुक मुसलमान कवि अपनी प्रेम की पीर की कहानियाँ लेकर हिन्दी जगत में अवतरित हुए। ये कहानियाँ हिन्दुओं के ही घरों की कहानियाँ थीं। इनकी कोमलता और मधुरता का अनुभव करके इन कवियों ने यह सिद्ध कर दिया है कि मनुष्य के हृदय में एक ही सत्ता समान रूप से व्याप्त है। और इसीलिए मधुर और कोमल भावनायें मनुष्य मात्र में समान रूप से स्थिति में रहती है। अमीर खुसरो आदि साहित्य के क्षेत्र में हिन्दू-मुसलमानों की एकता का प्रयत्न इससे पूर्व ही कर चुके थे। भाषा के माध्यम से वे दोनों को एक दूसरे के निकट लाना चाहते थे। किन्तु अलाउद्दीन आदि कट्टर-मुसलमान-शासकों ने अपने अत्याचारों से भेद की खाई को और बढ़ाया। कबीर की अटपटी वाणी के इस भेद को दूर करने में असमर्थ रही। वे मानव हृदय की एकता का रूप उपस्थिति न कर सके। जायसी आदि प्रेम-गाथा के कवियों में प्रेम का शुद्ध रूप उपस्थिति कर इस क्षेत्र में एकता के लिए बहुत बड़ा काम किया। उन्होंने जीवन की एकता को सामने रख इस कार्य को आगे बढ़ाया। हिन्दू और मुसलमानों के आन्तरिक भेदभाव को मिटाने वालों में जायसी का नाम अग्रगण्य है। उन्होंने मुसलमान होते हुए भी हिन्दुओं की कहानियाँ हिन्दुओं ही की बोली में पूर्ण सहृदयता से कहकर उनके जीवन की मर्मस्पर्शनी अवस्थाओं के साथ अपने उदार हृदय का पूर्ण सामञ्जस्य दिखा दिया। इस क्षेत्र में कबीर केवल परोक्ष सत्ता की ही एकता का आभास दे पाये थे। अतः आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का यह कथन अक्षरशः सत्य है कि—"कबीर ने केवल भिन्न प्रतीत होती हुई परोक्ष सत्ता की एकता का आभास दिया था। प्रत्यक्ष जीवन की एकता का दृश्य सामने रखने की आवश्यकता बनी थी। वह जायसी द्वारा पूरी हुई।"

प्रश्न १९—के लिए देखिए विद्यापति—प्रश्नोत्तर प्रश्न २२

आलोचनात्मक अध्ययन : प्रश्न और उत्तर में

१. सूरदास	—वासुदेव शर्मा शास्त्री	२॥)
२. तुलसीदास	—प्रो० भारतभूषण 'सरोज' एम० ए०	३॥)
३. बिहारी	,, ,,	२॥)
४. जायसी	,, ,,	२॥)
५. भाषा विज्ञान	,, ,,	२॥)
६. साहित्यालोचन	,, ,,	२॥)
७. उद्धवशतक	,, ,,	२॥)
८. कामायनी	,, ,,	१)
९. साकेत	,, ,,	१॥)
१०. प्रियप्रवास	,, ,,	१)
११. आधुनिक तीन महाकाव्य [कामायनी, साकेत और प्रियप्रवास तीनों पुस्तकें एक ही जिल्द में]		३॥)
१२. प्रेमचन्द	—श्री राजनाथ शर्मा एम० ए०	२॥)
१३. कबीर	,, ,,	२॥)
१४. निराला	,, ,,	२॥)
१५. ग़बन (प्रेमचन्द)	,, ,,	१॥)
१६. हिन्दी साहित्य का इतिहास	,, ,,	२॥)
१७. हिन्दी भाषा का इतिहास	,, ,,	२॥)
१८. गोदान	,, ,,	२॥)
१९. कवि प्रसाद	—डा० शम्भूनाथ पाण्डेय	२॥)
२०. गद्यकार प्रसाद	,, ,,	२॥)
२१. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	—श्री रामजीलाल एम० ए०	२॥)
२२. संस्कृत साहित्य का इतिहास	—डा० द्वारिकाप्रसाद	३)
२३. विद्यापति	—श्री मुरारीलाल 'उप्रैती' एम० ए०	२॥)
२४. चन्द्रगुप्त	—डा० शम्भूनाथ पाण्डेय	२॥)
२५. भ्रमरगीत-सार	—डा० राम गोपाल शर्मा 'दिनेश'	२॥)
२६. विनय पत्रिका	,, ,,	२॥)
२७. शकुन्तला नाटक	,, ,,	१॥)

विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा